शाम के प्रकाश पर अंधेरे का आवरण चढ़ने लगा था. उसके मन के किसी कोने में आशा की एक किरण अभी भी झिलमिला रही थी कि शायद माँ उसे ढूंढ़कर मनाकर ले जाएगी. परंतु कोई नहीं आया. द्वार के पास आकर देखा कि खुले हुए किवाड़ शायद उसी की प्रतीक्षा कर रहे थे. परंतु उसके कदम आगे नहीं बढ़े. उसने उस घर की ओर एक बार फिर उचटी हुई निगाहों से देखा, जिसमें पल कर वह चौदह वर्ष का किशोर बन गया था. मां की ममता की उसे धुंधली-धुंधली याद अभी भी है और पिता के प्यार की भी. और भी अनेक हंसते-मुस्कराते चित्र उसकी कल्पना में साकार हो उठे, जिनमें बहुत से चित्र इस मां के भी थे. परंतु आज न जाने क्यों मां की क्रोध से जलती हुई आंखों के सिवा इस घर में उसे कुछ और दिखाई ही नहीं दे रहा था!

वह तेज कदमों से चला जा रहा था. अनजाने में ही उसके पांव विजय के घर की ओर बढ़ने लगे. सारे लड़कों से लड़ाई करने के बाद केवल विजय ही तो उसके दोस्त के रूप में बचा था, जिसके साथ वह घूमता-फिरता ताश खेलता और मास्टर के घर पढ़ने के बहाने चोरी-चोरी सिनेमा देखने जाता. इस असहाय घड़ी में वही इसकी सहायता भी करेगा. उसके पास हरदम कुछ न कुछ रुपए रहते ही हैं. उससे ही वह रुपए मांगेगा और कहेगा कि किसी होटल में ले जाकर खाना तो खिला ही दे; सुबह नाश्ता करके स्कूल से परीक्षा फल लेने गया था, तब से भूखा ही तो है.

कॉल-बेल बजाते ही द्वार पर विजय का नौकर आ खड़ा हुआ.

"जल्दी से विजय को बुला दो."

"वह तो आज अभी तक स्कूल से ही नहीं लौटे हैं. मां जी रो-रोकर परेशान हुई जा रही हैं और बाबू जी ढूंढ़-ढूंढ़ कर थक गए, पता चला है कि अबकी फिर वह लुढ़क गए हैं. और, रतन भैया, तुम तो पास हो गए हो ना? मिठाई नहीं लाए?"

"मैं?" रतन कुछ हकलाने-सा लगा, "नहीं, मैं भी रह गया. . ."

"वाह! खूब दोस्ती निभाई है तुम दोनों ने! लेकिन रतन भैया बुरा न मानो तो एक बात कहूं. हूं तो छोटा आदमी, बिना पढ़ा-लिखा, मगर इतनी बात तो जानता हूं कि विजय भैया की संगति में पड़कर तुम क्यों अपना सत्यानाश किए दे रहे हो! उन्हें तो रुपए का नशा है. कहते हैं कि पढ़ेंगे नहीं, तो भी भूखे नहीं रहेंगे. इतना धन घर में भरा है. मगर तुम?. . . आओ, अंदर नहीं आओगे?" एक सांस में नौकर ने बात पूरी कर दी. .

"आं. . .?" रतन पता नहीं किन विचारों में भटक रहा था.

"नहीं, अब चलूंगा. मगर, विजय होगा कहां?"

"भगवान जाने! ये आजकल के लड़के तो गजब ढाए हैं. यही सुख दे रहे हैं मां-बाप को!" द्वार बंद करते-करते वह कह गया.

कुछ पल तक रतन खड़ा रहा, फिर चल दिया. मां की ही बातों को आज विजय के नौकर ने दुहराकर रतन के मन की गहराई तक उतार दिया था. शायद इसी कारण आज पहली बार उसके मन में विजय के प्रति कुछ विपरीत भाव उत्पन्न हुए और कुछ-कुछ इस बात का पछतावा भी होने लगा कि काश, वह विजय के साथ रहकर अपना समय नष्ट न करता. परंतु ये सब क्षणिक विचार थे; उसके निश्चय को बदल नहीं सके.

कुछ देर उसने विजय की तलाश की, परंतु वह नहीं मिला. फिर, उसको पता ही नहीं चला कि किन विचारों की रौ में वह स्टेशन पहुंच गया है. स्टेशन पर बिकती हुई खाने-पीने की अनेक चीजें देखकर उसकी भूख और तीव्र हो उठी. नल से चुल्लू भर पानी पीकर उसने पेट की जलन को शांत करने की कोशिश की.

तभी धड़धड़ाती हुई एक ट्रेन आई. यात्रियों की धकापेल के बीच वह भी तीसरे दर्जे के एक कंपार्टमेंट में चढ़ गया. ट्रेन कहां जाएगी? उसके टिकट का क्या होगा? इन सब बातों से अनजान, केवल 'जो होगा देखा जाएगा' इसी विचार के सहारे इस अनजानी मंजिल की ओर उसने पांव बढ़ा दिए थे. अजीब घुटन और उमस भरे कंपार्टमेंट में वह एक कोने में दुबका बैठा था. उसे विश्वास था कि वहां बैठे रहने पर वह टिकट-चेकर की निगाहों से बचा रहेगा.

ट्रेन की गति की तरह उसके विचारों की गति भी तीव्र थी. कुछ देर तो उसकी दृष्टि सहज रही. परंतु सहसा वह अजीब घबड़ाई हुई दृष्टि से इधर-उधर देखने लगा. ट्रेन के साथ अंधेरे में चलते हुए-से बड़े-बड़े पेड़ों से उसे भय लगने लगा और तभी उसके उलझे हुए विचारों में एक झटका लगा. उसने सोचा कि मान लो, टिकट-चेकर की मुसीबत से बच गया, मगर रहने-सोने और खाने-पीने की समस्या का क्या होगा? क्या वह चोरी करेगा? भीख मांगेगा? जेब काटेगा? या अनेक लड़कों की तरह वह भी अपनी आन दे देगा?

'नहीं. . . नहीं. . .' सहसा उसकी हृदय गति तीव्र हो उठी. वह इतना कायर नहीं है. घर से वह मरने के लिए नहीं, कुछ बनने के लिए चला है—बिशन की तरह! और उसकी आंखों में भविष्य के जीवन की एक सुंदर बगिया लहरा उठी, जिसमें स्वप्नों के रंगबिरंगे फूल ही फूल थे. कांटों का नाम भी नहीं था. . . यह बात तो

(कृपया पृष्ठ 44 देखिए)

kissekahani.com

कहानी

खोखली नींव

वागीशकुमार सिंह

ज्योंही मैं कक्षा में घुसा, मेरी नजर ब्लैक बोर्ड पर गई. ब्लैक बोर्ड पर शंकर भगवान का कार्टून बना था. कार्टून में भगवान की आंखें विशेष रूप से खराब बनाई गई थीं. नीचे लिखा था—'नए मास्टर जी!'

बात साफ थी. किसी शरारती लड़के ने मेरा कार्टून बनाया था, क्योंकि मेरा नाम महेश है और मेरी आंखें बचपन से ही खराब हैं.

कार्टून का सरसरी तौर पर निरीक्षण करके मैं मुस्कराया. फिर पूरी कक्षा पर नजर डाली. सभी लड़के चुपचाप बैठे थे. मैंने उन्हें संबोधित करके कहा—"कार्टून वैसे तो ठीक ही है, लेकिन बनाने वाले ने एक कमी छोड़ दी. इस में शंकर भगवान की तीसरी आंख नहीं बनाई. अब तुम कहोगे कि तीसरी आंख मेरे तो है नहीं, किंतु तुम्हारा ऐसा सोचना गलत है. ज्ञान ही तो मेरी तीसरी आंख है! इसी के जरिये मैं तुम्हें रोशनी दूंगा. क्यों, है ना ठीक!"

इतना कहकर मैंने मेज पर से चाक उठाई और शंकर भगवान के कार्टून में तीसरी आंख बना दी.

कार्टून पूरा करने के बाद मैं मतलब की बात पर आया—"प्रिय विद्यार्थियों, पढ़ाई के हिसाब से तुम मेरे शिष्य हो और मैं तुम्हारा गुरु, लेकिन उम्र के हिसाब से तुम्हारे और मेरे बीच ज्यादा अंतर नहीं है. यही कोई छह-सात साल का होगा. चाहो तो तुम मुझे अपना बड़ा भाई भी समझ सकते हो. मैं अपने विद्यार्थी-जीवन में हमेशा फर्स्ट डिवीजन पास हुआ. पिछले साल बी. एड. की परीक्षा में मेरी फर्स्ट पोजीशन भी आई. मैं इसी साल टीचर बना हूं. तुम्हारे बीच यह मेरा पहला साल ही नहीं, बल्कि पहला दिन भी है. मेरा नाम महेश है. जाति का हरिजन हूं."

जाति सुनते ही कक्षा में कानाफूसी होने लगी. नाक-भौंह सिकोड़ी जाने लगीं, परंतु मैंने इसपर ज्यादा ध्यान नहीं दिया. कक्षा का हाजिरी रजिस्टर निकालने के लिए मेज की दराज खोली. दराज के खुलते ही चार-पांच मेंढक उछलकर मेरे ऊपर आ गिरे. एक मेंढक तो मेरी कमीज की जेब में ही पहुंच गया. पूरी कक्षा ठठा कर हंस दी.

अपने को यथासंभव संयत करते हुए मैंने कहा—"ओहो! . . . जो ये लोग भी पढ़ने आए हैं! लेकिन . . . शायद इन्हें यह नहीं मालूम कि इनकी जगह भी तुम्हारे ही पास है!"

यह कहते हुए मैं जैसे ही कुर्सी पर बैठा, तीन टांग की कुर्सी मुझे लेकर लुढ़क गई. मैं फुर्ती से उठ खड़ा हुआ और अपने कपड़े झाड़ते हुए लड़कों से बोला—"लड़कों को तो मजाक करते हुए देखा था, लेकिन आज पता चला कि कुर्सी-मेज भी मजाक करती हैं!"

इस बार कोई भी नहीं हंसा. पूरी कक्षा के चेहरे पर हैरानी का भाव था, क्योंकि इतना होने पर भी मैं गुस्सा होने की बजाय मुस्करा रहा था.

मैंने रजिस्टर खोला और हाजिरी लेनी शुरू की. मैं हाजिरी के साथ-साथ प्रत्येक लड़के से उसका परिचय भी लेता जा रहा था. कुछ ही समय बाद, कक्षा के दरवाजे से आवाज आई—"क्या मैं अंदर आ सकता हूं?"

मैंने रजिस्टर पर से निगाह उठाकर दरवाजे की ओर देखा. एक हृष्ट-पुष्ट लड़का, लगभग छह फुट की ऊंचाई का, बड़ा भोला-सा चेहरा बनाए खड़ा था.

"यस, कम इन."

मेरे कहने पर वह अंदर आ गया. मैंने उससे पूछा—"क्या नाम है तुम्हारा?"

"रघुवीरसिंह राठौर. उम्र सोलह साल. प्यार से लोग मुझे रघु कहते हैं. बाप का इकलौता बेटा हूं. मेरा बाप आठ गांवों का मुखिया है. मेरा चाचा राज्य का मुख्य मंत्री है. मेरा जीजा खाद्य मंत्री है. वैसे गेहूं की बोरियां मैं भी सप्लाई कर सकता हूं, पांच परसेंट कमीशन पर. जरूरत हो तो बतला देना."

इतना सब कुछ वह एक ही सांस में कह गया. कहने का ढंग व्यंग्यात्मक था. सारी कक्षा में हंसी का फौव्वारा छूट पड़ा. केवल दो ही चुप थे, एक रघु और दूसरा मैं.

मैंने सीट पर बैठते हुए रघु से कहा—"तुम्हारे परिवार के विषय में जानकर बेहद प्रसन्नता हुई. मेरी हार्दिक कामना है कि तुम अपने चाचा से भी ऊंचे बनो!"

"अजी मैं अभी से ही बहुत ऊंचा हूं! मेरे जितनी ऊंचाई का घर भर में कोई नहीं है!"

रघु से और कुछ कहना मैंने उचित नहीं समझा, इसलिए पुनः हाजिरी लेनी शुरू कर दी.

हाजिरी लेने के बाद जब मैंने मॉनीटर का नाम पूछा, तो जवाब में रघु खड़ा हो गया.

मैंने रघु को इंगित करके सारी कक्षा से कहा—"इस कक्षा के लड़के तो बहुत ज्यादा जिंदादिल मालूम होते हैं. आज पहले ही दिन इन्होंने मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया है जैसा अपने मित्रों और निकटवर्तियों से किया जाता है. लेकिन हमें एक बात नहीं भूलनी चाहिए कि अति हर चीज की बुरी होती है. मजाक भी इतने दुखदायी हो जाते हैं कि इतिहास बन जाता है. कौन नहीं जानता कि महाभारत के युद्ध का एक बहुत बड़ा कारण द्रोपदी का दुर्योधन के प्रति किया गया मजाक ही था. मैं समझता हूं, ऐसा मजाक तो तुम भी पसंद नहीं करोगे, जिसमें मेरी जान पर बन आए या तुम्हारे स्कूल से निकाले जाने की नौबत आ जाए . . ." मैं धाराप्रवाह कहता चला जा रहा था और लड़के मंत्रमुग्ध होकर मेरी बातें सुन रहे थे. तभी स्कूल का घंटा बजा. मेरा पीरियड खत्म हो चुका था.

मैंने जाते-जाते कहा—"मुझे दुःख है कि आज का समय यूं ही गंवाना पड़ा. कल से हम पढ़ाई आरंभ करेंगे."

●

जिस कक्षा का मुझे क्लास-टीचर बनाया गया था, उसके विषय में मुझे स्टाफ-रूम में पहुंचकर विस्तार से मालूम हुआ. यह कक्षा मार-पीट और बदमाशी में सबसे ज्यादा बदनाम थी. स्कूल के लड़के ही नहीं, वरन् आसपास के गांवों के आदमी भी इस बात को जानते थे. आठ गांवों के मुखिया का लड़का रघु, इसी कक्षा में पढ़ता था. उसने पंद्रह-बीस लड़कों का गुट बना रखा था. चाहे जिसको पीट देना, जो मन में आए छीन लेना, खेतों में घुसकर गन्ने खाना, बागों से जाकर फल तोड़ना, और फिर खाना कम, बिगाड़ना ज्यादा—यही काम था इस गुट का.

क्या मजाल कि कोई लड़का या आदमी चूं भी करे. जिसने रघु का प्रतिरोध किया, उसी की वह दुर्गत बनाई गई कि बेचारे को सात-आठ दिन खाट पर पड़कर हल्दी का लेप करवाना पड़ा.

आज कक्षा में हुई सारी शरारतों के लिए रघु ही जिम्मेदार था. वह वास्तव में देर से थोड़े ही आया था. देर से आने का तो उसने बहाना किया था.

कई दिनों बाद की बात है. हाजिरी चल रही

थी कि बीच में ही चपरासी आ गया—"गुरु जी, आपको हैड मास्टर साब बुलाते हैं."

मुझे बीच में ही उठकर जाना पड़ा. जल्दी में मेरा बटुआ और चश्मा मेज़ पर ही रखे रह गए.

"रघु, तुम्हारे कितने दोस्त हैं इस कक्षा में?"

"कम से कम दस लड़के तो मेरी ही कक्षा में हैं. पूरे स्कूल में पचास से भी ज्यादा ऐसे लड़के होंगे, जो मेरे एक इशारे पर जान तक देने को तैयार हैं!"

"तुम्हारे दोस्त तुम्हें इतना क्यों चाहते हैं?"

"सभी को मेरे पिताजी से काम पड़ता है. तुमसे स्वार्थ के संबंध हैं. ये सब तुम्हारे दुश्मन हैं.'

"सर, होश में रहिए. . .!" रघु के हाथों की मुट्ठियां कस गईं, दांत भिच गए और क्रोध के मारे चेहरे का रंग लाल हो गया.

"रघु शांत होकर मेरी बात सुनो, किशोरावस्था ही तो सारे जीवन का आधार है. यह स्कूली जीवन ही तुम्हारी वह नींव है, जिस पर

पांच ही मिनिट बाद जब मैं वापस आया, तो बटुआ और चश्मा दोनों नदारद थे.

मैंने रजिस्टर खोला और दुबारा हाजिरी लेनी आरंभ कर दी. हाजिरी लेने से मालूम हुआ कि रघु का लंगोटिया दोस्त रामधन गायब हो गया है, लेकिन मेरे जाने से पहले तो वह था. रामधन का एकाएक अंतर्ध्यान होना रहस्य की बात थी. निश्चित रूप से कक्षा पर अपना दबदबा बनाए रखने के लिए ही, यह सब रघु के इशारे पर किया गया था. मैं रघु की ओर देखकर मुस्कराया और उससे कहा—"रिसेस में मुझसे स्टाफरूम में मिलना."

किसी का जमीन-जायदाद का मामला है, किसी की नौकरी का टंटा है, किसी के आपसी झगड़े हैं, तो किसी को पैसों की जरूरत है. हर किसी के काम मेरे पिता जी के प्रभाव के कारण हो जाते हैं. चाहे वे बिलकुल गलत ही क्यों न हों."

"इसका मतलब है, तुम पास भी पिता जी के प्रभाव के कारण होते आ रहे हो?"

"मैं ही क्यों, रामधन, पुखराज, नेमसिंह आदि सभी साथी इसी कारण पास होते हैं. हमें कौन रोक सकता है! हम इस साल भी पास होंगे."

"यह संभव है, रघु, कि तुम्हें ये सब अपने हितैषी लगते हों, परंतु मेरे विचार से इन सबके भावी जीवन का भवन खड़ा होगा. मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि तुम्हारी नींव खोखली होती जा रही है. इसको खोखला करने वाले और कोई नहीं, तुम्हारे दोस्त और घरवाले ही हैं. तुम्हारी क्षमता को हर कोई दुरुपयोग कर रहा है. दोस्त तुम्हारे गलत कामों को भी प्रशंसाभरी नजरों से देखते हैं; खुद के गलत काम करवाकर तुम्हारी पीठ ठोंकते हैं. अध्यापक और गांव वाले सब कुछ सुनकर भी अनसुना कर देते हैं. और यदि तुम पर कभी कोई मुसीबत आती भी है, तो तुम्हारे पिता जी तुम्हें बचा लेते हैं."

"सर, आपने मुझे यह बकवास सुनाने को बुलाया था?"

"देख लेना, रघु, अगर यही हाल रहा, तो एक दिन तुम ऐसी स्थिति में पहुंच जाओगे, जब तुम्हारे वापस लौटने के सभी रास्ते बंद हो चुके होंगे. उस समय ये लोग तुम्हीं को दोषी

ठहराकर अलग हो जाएंगे. तब तुम्हारे पास सिवाय इसके कोई चारा नहीं रहेगा कि इन सबकी गलतियों की सज़ा भी तुम्हीं भुगतो."

"अब आप अपनी सीमाएं तोड़ रहे हैं, सर. . ." यह कहकर रघु स्टाफ-रूम से बाहर चला गया.

●

धीरे धीरे दिन सरकने लगे.

लड़कों को पढ़ाने में मैं अपनी क्षमता का भरपूर उपयोग करता था. लड़कों को नोट्स लिखवाता था; नियमित रूप से कक्षा का कार्य भी करवाता था; प्रत्येक छात्र की कापी पूरी सावधानी के साथ जांचता था. जहां तक संभव होता, कक्षा में सवाल याद भी करवाता था. कक्षा में पढ़ाते समय या उदाहरण देते समय अनेक बार छात्रों को रोचक और प्रेरणाप्रद कहानियां भी सुनाता था. इससे छात्रों में ताजगी बनी रहती थी और वे पढ़ने को हमेशा उत्सुक दिखलाई देते थे. मैं उदाहरण इतने सरल और सटीक चुनता था कि लड़कों पर उनका अनुकूल प्रभाव पड़ता था. स्कूल के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी मैंने छात्रों को पूरे उत्साह से सहयोग दिया था.

दूसरी तरफ मुझे नीचा दिखलाने का रघु का हर प्रयत्न बेकार हो रहा था. रघु और उसके साथी हर वक्त कुछ न कुछ करने के लिए कसमसाते रहते थे. शरारतें गुंडागर्दी का रूप लेती जा रही थीं और उनकी सूची भी बहुत लंबी हो गई थी.

छमाही परीक्षा में रघु ने और उसके साथियों ने मेरे विषय में नकल करनी चाही थी. जब मैंने नहीं करने दी, तो उसने जबरदस्ती की, जिसके फलस्वरूप मैंने नकल करने के अपराध में रघु और उसके कई साथियों को नंबर नहीं दिए. इसी कारण एक दिन भरी दोपहरी में, जब मैं स्कूल से घर लौट रहा था, मुझ पर हमला कर दिया गया.

यह तो मात्र संयोग ही था कि उसी समय वहां से पुलिस की गाड़ी गुजरी, जिसे देखते ही मुझे पीटने वाले भाग खड़े हुए. पुलिस किसी गांव में फौजदारी के मामले में तहकीकात करने जा रही थी. थानेदार ने गाड़ी रोककर मुझसे रिपोर्ट लिखवाने को कहा, परंतु जब उसे पीटने वालों के विषय में मालूम हुआ, तो उसने रिपोर्ट लिखने से इंकार कर दिया कि कौन फंसे इस मामले में, कुछ किया तो जा नहीं सकता था.

मुझे मामूली-सी चोटें आई थीं, चार-पांच दिन में ठीक हो गई.

स्कूल की तरफ से मैंने रघु और उसके साथियों के घर दो पत्र भी लिखे. 'प्रोग्रेस रिपोर्ट' में भी प्रत्येक के विषय में विस्तार से लिखा, लेकिन किसी के भी अभिभावक मुझसे मिलने नहीं आए. हां. 'प्रोग्रेस रिपोर्ट' में उनके हस्ताक्षर या अंगूठे जरूर थे. शायद किसी भी लड़के के अभिभावक की चरित्र संबंधी मामलों में रुचि नहीं थी. उन्हें तो बस बेटे के पास होने से मतलब था.

एक दिन मैं रघु के पिता जी से मिलने के लिए तीन मील दूर स्थित उनके गांव भी गया था. लेकिन रघु की चाल के कारण उसके पिता जी से मिलना तो दूर रहा, उलटे टूटी-फूटी साइकिल और फटे कपड़ों सहित वापस लौटा था.

रघु ने मेरे साथ क्या नहीं किया; शहर में बैठे मेरे मां-बाप के पास उसने मेरी मृत्यु की झूठी खबर भिजवा दी; धमकी-भरे बीसियों पत्र मेरे पास आए तथा मेरे मां-बाप के पास भी गए. जिस किसी लड़के के मुख से मेरी तारीफ निकली, उसी का रघु ने भुरता बना दिया.

इतना सब होते हुए भी मैं दृढ़ता से अपना काम किए जा रहा था. रघु के प्रति किसी भी प्रकार की कटुता मेरे मन में नहीं थी. मुझे जब भी मौका मिलता, मैं रघु को समझाता. उसे उसका भविष्य बतलाता. गलत और सही काम में अंतर बतलाता.

मुझे नहीं मालूम कि रघु जैसे चिकने घड़े पर इसका कुछ असर भी होता था या नहीं. मैं तो अपना काम किए जा रहा था ताकि अध्यापक के फ़र्ज़ में कोई कमी न रह जाए.

●

इसी तरह पूरा साल बीत गया. वार्षिक परीक्षाएं भी खत्म हो गईं. अब एक हफ्ते में रिजल्ट तैयार करना था.

एक दिन मुझे हैड मास्टर साहब ने बुलाकर कहा—"ये दस लड़के पास होने ही चाहिएं."

"यह असंभव है."

"तुम्हें करना होगा."

"यदि इन्हें पास करना जरूरी है, तब तो जितने भी लड़के फेल हो रहे हैं, सभी को पास किया जाए."

"यह कैसे हो सकता है! रिजल्ट सेंट-परसेंट नहीं रखा जा सकता. सभी को पास कर देने से अगले साल हाई स्कूल का रिजल्ट खराब हो जाएगा."

"तब तो मैं इनमें से एक भी लड़के को, कम से कम अपने विषयों में पास करने में असमर्थ हूं. मैंने भरपूर कोशिश कर ली है. अधिक से अधिक जितने नंबर मैं दे सकता था, हर लड़के को दिए हैं. लेकिन यह असंभव है कि टैस्टों में जीरो-जीरो जिनके नंबर हैं, उनके सात-सात कर दूं. छमाही परीक्षा के नंबर बढ़ाकर तीन की जगह तीस कर दूं."

"ऐसा ही करना पड़ेगा. तुम नहीं जानते, इन लड़कों में कोई मिनिस्टर का भतीजा है तो कोई भानजा; कोई दोस्त का लड़का है तो कोई चमचे का. इन सभी का राज्य सरकार के मंत्रीमंडल से कुछ न कुछ संबंध है."

"मंत्रीमंडल से संबंध का मतलब यह नहीं है कि इन बच्चों का भविष्य अंधकार में डाला जाए. ये बच्चे, जिनमें अभी से कामचोरी की, मेहनत से बचने की, मुफ्त में पास होने की प्रवृत्ति जड़ें जमाती जा रही है, क्या आगे चलकर समाज के लिए सिरदर्द साबित नहीं होंगे?"

"मैंने तुम्हें भाषण देने के लिए नहीं बुलाया है. तुम अपना चार्ज दूसरे मास्टर को सौंप दो."

"क्यों सौंप दूं? मैं साल भर इस कक्षा का क्लास टीचर रहा हूं. मैंने हर लड़के को समझा है, परखा है. मुझसे ज्यादा अच्छी तरह से कोई नहीं जानता कि कौन लड़का कैसा है. इस कक्षा का रिजल्ट तैयार करने का अधिकार मेरा है और वह मेरा ही रहेगा."

"सिली . . . ! क्या तुम्हारा यह अंतिम फैसला है?"

"जी हां, यदि मेरे साथ ज्यादती की गई, तो आप यह मत भूलना कि लोकतंत्र में विरोधी पक्ष भी होता है. मैं यह मामला जनता की अदालत में ले जाऊंगा, जहां आपको जवाब देना होगा."

"तुम सेकेंड ग्रेड के टीचर होकर मुझे धमकी दे रहे हो! तुम जा सकते हो. . ." क्रोध में आकर हैड मास्टर साहब ने मेज पर मुक्का मारा.

"थैंक्यू, सर. . ." मैं कमरे से बाहर निकल आया.

●

दूसरे दिन मैं ज्योंही रिजल्ट बनाने बैठा, हैड मास्टर साहब का बुलावा आ गया.

मैंने मुस्कराते हुए हैड मास्टर साहब के कमरे में प्रवेश किया. हैड मास्टर साहब के सामने की कुर्सी पर एक देहाती सज्जन बैठे थे—बड़ी-बड़ी घुमावदार मूंछें, भरा हुआ चेहरा, खद्दर की धोती और कुर्ता पहने हुए. कुल मिलाकर उनका व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक था. मैं उन्हें तथा हैड मास्टर साहब को नमस्ते करके खड़ा हो गया.

हैडमास्टर साहब ने मुझसे कहा—"ठाकुर साहब तुमसे मिलने आए हैं. यह रघु के विषय में कुछ बात करना चाहते हैं."

"पांय लागूं, ठाकुर साहब, आप रघु के ही नहीं, मेरे भी पिता जी हुए. रघु को मैं अपना छोटा भाई समझता हूं."

मेरी बात सुनकर पहले तो रघु के पिता जी मुस्कराए. फिर बोले—"देखो, महेश जी, बच्चे तो शरारतें करते ही हैं."

"जी हां, बचपना होता ही शरारतें करने के लिए है."

"मेरा रघु जरा ज्यादा नटखट है. इकलौता बेटा है. लाड़-प्यार में पला है. दूसरी ओर मैं

बहुत व्यस्त रहता हूं. ज्यादातर घर से बाहर ही रहना पड़ता है. इसी लिए रघु की ओर देखने को समय ही नहीं मिलता. आप लोगों को ही उसका ध्यान रखना है."

"जी हां, मुझे अपनी जिम्मेदारी का एहसास है. साल के शुरू से ही मेरी यह इच्छा रही है कि मैं रघु के विषय में आपको बतलाऊं. मैंने स्कूल की तरफ से आपको दो पत्र भी लिखे थे. प्रोग्रेस रिपोर्ट में भी रघु के विषय में विस्तार से जानकारी दी थी."

इतना कहकर मैंने प्रोग्रेस रिपोर्ट तथा उन दोनों पत्रों की प्रतिलिपियां रघु के पिता जी के सामने रख दीं.

पत्रों को और प्रोग्रेस रिपोर्ट को देखने के बाद वह कहने लगे—"ये पत्र मुझे नहीं मिले. प्रोग्रेस रिपोर्ट पर भी दस्तखत मैंने नहीं किए. इसका मतलब है, रघु हद से ज्यादा आगे बढ़ गया है!"

मैंने रघु के पिता जी को जुलाई में स्कूल खुलने से लेकर अब तक की प्रमुख घटनाएं भी ज्यों की त्यों सुना दीं.

सब कुछ सुनकर ठाकुर साहब बोले—"मुझे दुःख है कि मेरे बेटे ने आप के साथ ज्यादती की. लेकिन, महेश जी, इस साल तो रघु को पास करना ही होगा."

मैंने हैरानी से पूछा—"इतना जानकर भी आप यह कह रहे हैं?"

"महेश जी, आप नहीं समझते मेरी मजबूरियों को. कुछ ही महीनों बाद चुनाव हैं. इस बार मैं भी खड़ा हो रहा हूं. यदि इस बार रघु पास नहीं हुआ, तो मेरी साख मिट्टी में मिल जाएगी. मेरे ही रिश्तेदार मुझे शक की नजरों से देखने लगेंगे. हर कोई सोचेगा कि जब मैं अपने बेटे को पास नहीं करवा सका तो उनके काम क्या करवा सकूंगा!"

"मैं ऐसा नहीं समझता, ठाकुर साहब, मेरे विचार में इससे लोगों में आपकी ईमानदारी और सच्चाई की साख बढ़ेगी."

"तुम राजनीति को नहीं समझते. यह मामूली-सी बात मेरी हार का कारण बन सकती है."

इसके बाद ठाकुर साहब ने मुझे पैसे का लालच देना शुरू किया. बोली बढ़ते-बढ़ते पांच हजार तक जा पहुंची, लेकिन मैंने हाथ जोड़ दिए.

आखिरकार ठाकुर साहब का धीरज चुक गया. एक नेता की तरह उन्होंने चेहरे पर शराफत का जो मुखौटा चढ़ा रखा था, वह उतर गया. क्रोध में वह हैड मास्टर साहब पर उबल पड़े—"तो तूने इसी लिए मुझे बुलाया था! यह दो कौड़ी का मास्टर मेरी सरासर बेइज्जती किए जा रहा है और तू तमाशा देख रहा है. तूने मुझे पहले क्यों नहीं बतलाया कि तेरे यहां ऐसे मास्टर भी हैं!"

"जी . . . जी . . ."

"ससुरा, भंगी की औलाद भंगी ही रहेगा. काजल धोने से सफेद थोड़े ही होता है. याद रखना, महेश बाबू, रघु का पास होना मेरी इज्जत का सवाल है. अगर रघु फेल हो गया तो तुझे लौटकर मां-बाप का मुख देखना नसीब नहीं होगा."

यह कहकर ठाकुर साहब झटके से ऑफिस के बाहर निकल गए. कुछ ही देर में जीप स्टार्ट होने की आवाज आई, जो धीमी होती चली गई.

मैंने हैड मास्टर साहब के चेहरे की तरफ देखा, वे इस प्रकार बैठे थे, जैसे उन्हें सांप सूंघ गया हो. मैं भी उठकर ऑफिस से बाहर चला आया.

●

रात काफी हो चुकी थी. परंतु मेरी आंखों में नींद का नाम भी नहीं था. आज सुबह ठाकुर साहब ने जो बातें कही थीं, वही मेरे दिमाग में घूम रही थीं. मेरी हीन भावना उभर आई थी. बचपन से लेकर अब तक जो तिरस्कार मैं सहता आया था, आज असहनीय हो चला था. मुझे हमेशा उपेक्षा की नजरों से क्यों देखा जाता है? 'क्या हम सचमुच आजाद हो गए हैं? कहां गया वह देश, जहां जातियां कर्मों के आधार पर होती थीं, जहां पर माता-पिता पुत्र को गुरु के चरणों में बिठलाकर निश्चित हो जाते थे, गुरु के लिए राजा भी आसन छोड़ देता था! आज का मास्टर दो कौड़ी का हो गया है!

'मैं . . . मैं . . . मूर्ख हूं. निश्चित रूप से मेरा दिमाग खराब है. ठाकुर मुझे जान से मारने की धमकी दे गया है. उसका बेटा मुझे साल भर सताता रहा है और मैं उसी रघु को सुधारने में लगा हूं. . . . साल भर झक मारता रहा, ताकि उसकी आदतें सुधर जाएं. कितना अच्छा होता, यदि मैं भी और मास्टरों की तरह रघु वगैरा की ट्यूशन कर लेता तथा पास करने का ठेका लेकर खूब पैसा बटोरता. पैसा . . . कितनी जरूरत है मुझे इसकी! ब्याह लायक तीन-तीन बहनें, बूढ़ा बाप और बीमार मां, यदि मुझे जान से मार दिया गया, तो इन सबका क्या होगा . . .

'क्यों न मैं भी रघु को उसी के हाल पर छोड़ दूं? हां-हां . . . यही ठीक रहेगा. इस तरह से मैं ठाकुर से बदला भी ले सकता हूं. पास होने के बाद रघु की हरकतें और बढ़ जाएंगी. जब वह बड़ा होगा तो चोरी करेगा, डाके डालेगा. तब उसे कोई नहीं रोक सकेगा. मकान बनने के बाद नींव थोड़े ही बनाई जा सकती है. वाह . . . वाह . . . क्या विचार

(शेष पृष्ठ 47 पर)

प्रति मास नए पुरस्कार

इस अंक की कहानियां ध्यान से पढ़ें और हमें 20 दिसंबर 1971 तक लिखें कि अपनी पसंद के विचार से कौन-कौन सी कहानी आप पहले, दूसरे और तीसरे आदि नंबरों पर रखेंगे. आप को इस प्रकार उन सभी कहानियों पर अपनी पसंद बतानी है, जिनका उल्लेख 'कहां-क्या' में 'कथा-कहानी' के अंतर्गत आया है. जिन पाठकों की पसंद का क्रम बहुमत से अधिकतम मेल खाता हुआ निकलेगा, उन्हें हम श्रेष्ठ पुस्तकें पुरस्कार में भेजेंगे.

किशोर पाठकों द्वारा इस प्रकार इस अंक की प्रथम स्थान पर चुनी गई कहानियों में से जिस कहानी को सर्वाधिक मत प्राप्त होंगे, उसके लेखक को भी 50 रुपये का एक अतिरिक्त पुरस्कार प्रदान किया जाएगा. अपनी पसंद एकदम अलग कार्ड पर लिखें; पता यह लिखें : संपादक 'पराग' (हमारे पसंद प्रतियोगिता नं 58), 10 दरियागंज, दिल्ली-6.

प्रतियोगिता नं० ५५ (सितंबर १९७१) का परिणाम

इस प्रतियोगिता में आठ पाठकों के हल सही आए. उनके नाम नीचे दिए जा रहे हैं, शीघ्र ही उन्हें पुरस्कार भेजे जाएंगे :

● **देवीसहाय नामा, जयपुर; रेनू प्रोवर, नई दिल्ली; किशनगोपाल शर्मा, नागौर; वीरेंद्रकुमार जौहरी, मिर्जापुर; बालकृष्ण शर्मा, धमतरी; रमेशकुमार सचदेव, नागपुर; नामप्रशाद चोपड़ा, आगरा; सुरेश, नई दिल्ली.**

किशोर पाठकों द्वारा सितंबर 1971 की प्रथम स्थान पर चुनी गई कहानियों का मत संख्यानुसार क्रम इस प्रकार है—1—कांटों की राह; 2—डाल से टूटा; 3—मेरा दुश्मन; 4—अभिनय; 5—लंगड़ा मन; 6—बंगला देश को मान्यता.

हमें प्रसन्नता है कि प्रथम चुनी गई कहानी 'कांटों की राह' के लेखक श्री वागीशकुमार सिंह को इस प्रतियोगिता क्रम में 50 रुपये का अतिरिक्त श्रेष्ठता पुरस्कार दिया जा रहा है. लेखक को हमारी ओर से बधाई.

कहानी

kissekahani.com

रोशनी के बीज

बगीचा छोटा था, किंतु हरा-भरा. अतुल का मन और वह बगीचा आपस में इतने जुड़ गए थे कि अतुल को महसूस होता था कि या तो यह बगीचा उसमें उगा हुआ है या वह बगीचे में. बगीचे के हरेपन को वह अपने अंदर भरकर हरा हो जाता. उसने दोस्तों से कहा भी था—'मेरा बगीचा 'हरियाली-सप्लाई-केंद्र' है. जब कभी मूड सूखा-ग्रस्त हो जाता है, तो मैं ताजगी के लिए बगीचे में आ जाता हूं!'

अवसर आने पर अतुल बड़े गर्व के साथ कहता—'मेरी हॉबी गार्डनिंग है.' . . . वैसे उसने दल-बदलुओं की तरह अपने कई शौक बदले हैं. पहले उसका शौक था डाक-टिकटों को इकट्ठा करना. टिकट-संग्रह के इस रंग-बिरंगे शौक ने यह रंग दिखाया कि वह सड़क के किनारे रखी कचरा-पेटियों में भी लिफाफे खोजना न भूलता. घर में डाक आती तो लिफाफे में से चिट्ठी बाद में निकाली जाती, पहले अतुल उस पर चिपका टिकट उतारने में लग जाता. मगर थोड़े ही समय में टिकट-संग्रह का बुखार उतर गया, पर एक और नया शौक आ चढ़ा—पेंटिंग का. उसने पहाड़ बनाने की कोशिश की तो बन गया टोपा; उसने लड़के का चेहरा बनाया, तो वह जानवर का बना, और यह भी पता नहीं किस जानवर का! अतुल मियां कुछ खास इरादे से चित्र बनाते और फिर बड़ी देर तक सोचते रहते कि आखिर यह चित्र है किसका? इन सब वारदातों से यह परिणाम निकला कि उसने फिर 'शौक-बदल' का निश्चय कर लिया.

इस बार उसने कांचों का शौक पाला. कांच के रंग-बिरंगे कंचे इकट्ठे करके उसे ऐसी खुशी होती थी, मानो रंग-बिरंगे हीरे एकत्रित कर लिये हों. लेकिन दुर्भाग्य-वश वह निशानेबाजी में माहिर न था, इसलिए कमलेश ने खेल-खेल में उसके बहुत सारे कंचे जीत लिये. अपने स्टॉक को दिवालियेपन की ओर अग्रसर होते देख, उसने होशियारी से फिर अपने शौक-बदल की घोषणा कर दी. इतना और बता दूं, लड़ना-झगड़ना और कभी-कभी रो लेना उसके हमेशा के मामूली शौक रहे हैं!

पता नहीं कब उसके दिमाग में वह बात खटक गई कि घर के सामने बढ़िया बगीचे का न होना घर की 'पर्सनॉल्टी' को 'डल' बना देता है. फेंसिंग तो थी और अंदर कुछेक क्यारियां भी, किंतु वे कुछ इस तरह सूनी-सूनी लगती थीं, जैसे फ्रेम में तस्वीर न हो, सिर्फ सूना चौखटा हो. सामने का सूना बगीचा और अतुल का सूना मस्तिष्क परस्पर टकरा गए. कभी वह अपने दिमाग में बगीचे की रूप-रेखा बनाता, तो कभी बगीचे में दिमाग लगाता. फिर उसके घर से कुछ ही दूर था कमलेश का घर. कमलेश के पिता जी ने अपने बगीचे को इतना संवार रखा था कि देखने से मन अपने आप पुलकित हो उठता. गेट पर लगी चमेली की बेल इतनी घनी होकर फैल गई थी कि लगता घर ने घूंघट ओढ़ रखा है! दुबे अंकल यानी कमलेश के पिता जी अपने हाथों से अपने बगीचे में पानी देते और पौधे रोपते. जब अतुल ने यह सब देखा, तो उसे अपना घर बूढ़ा और बदसूरत लगने लगा. उसने मन ही मन सोचा—'बिना बगीचे के घर में यौवन नहीं होता!'

●

जब अतुल ने अपने मन की बात अपने पापा को बताई, तो उन्होंने उसे पूरा समर्थन दिया. पानी की व्यवस्था के लिए पाइप भी ला दिया. वह काला रबर का पाइप अंधेरे में दूर से सांप जैसा लगता था. 'यह सांप जहर नहीं, अपितु पानी उगलकर पौधों को जीवन देता है!'—अक्सर अतुल सोचता था. वह जब कभी अपने बगीचे की कल्पना करता, तो तुलना के लिए उसके दिमाग में कमलेश का बगीचा

राजेशकुमार जैन

छाया रहता. सपने में उसे हरियाली और तरह-तरह के फूल नजर आने लगे—कुछ इस तरह के फूल जिन्हें उसने कभी देखा ही नहीं था. वह सोचता—'काश, सभी फूलों को वह अपने बगीचे में उगा पाता!'

धीरे-धीरे बगीचे का 'मेकअप' शुरू हुआ. पहले अतुल ने ईंटों से कुछ वृत्त, कुछ चौकोर पेसेज बनाए, फिर पौधे रोपने शुरू किए. चूंकि उसका बगीचा 'अंडर-कंस्ट्रक्शन' और 'अंडर-डेवलपमेंट' था, इसलिए दुबे अंकल से सहायता का समझौता हुआ. और उन्होंने फूलों की कई कलमें तथा बीज अतुल के बगीचे के लिए निर्यात किए. समय-समय पर उन्होंने अतुल के घर आकर उसके बगीचे का निरीक्षण किया तथा कई-सुझाव भी दिए. पर अतुल को उनके सुझावों की अपेक्षा उनके पौधों की ज्यादा जरूरत थी. इतनी कोशिशों के बावजूद भी अतुल महसूस करता रहा कि उसका बगीचा अभी 'कंपीटीशन' के योग्य नहीं हुआ है. कहां दुबे अंकल के बगीचे में खिले हुए डहेलिया के बड़े-बड़े सुंदर फूल, बटन-फ्लॉवर,

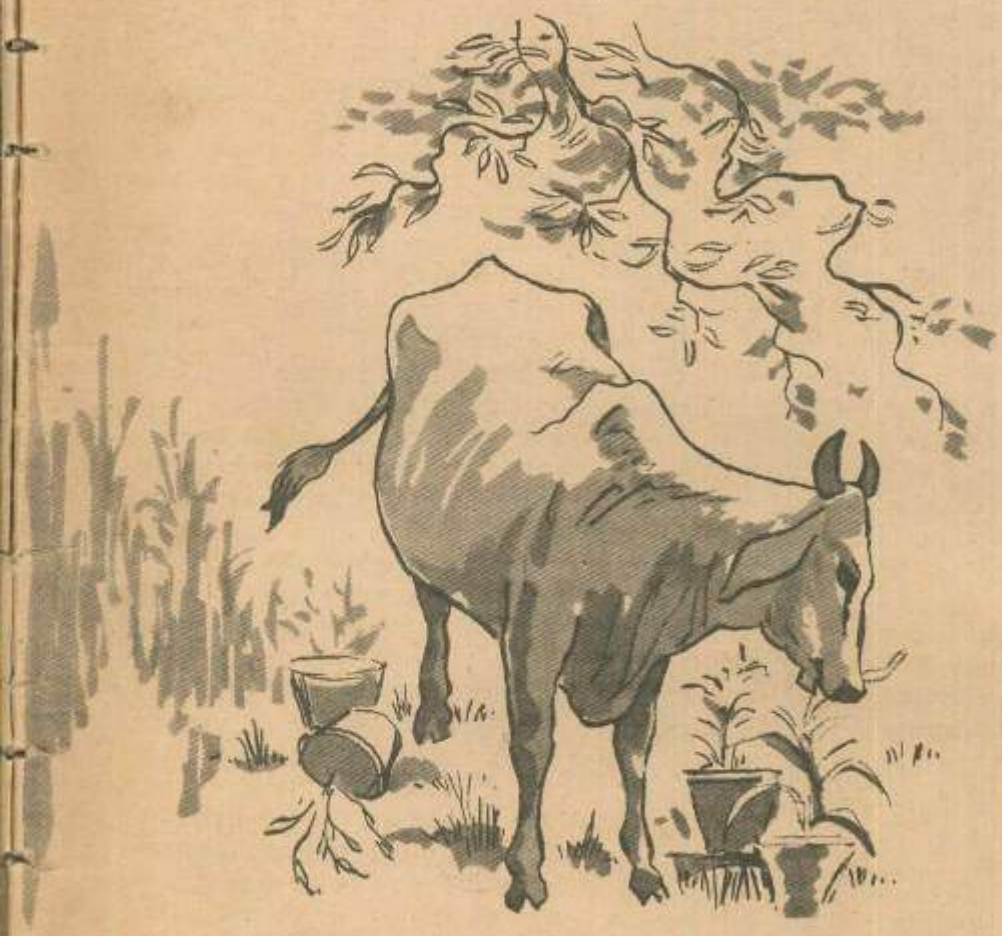

कॉस्मस, जीनिया, नाइन-ओ-क्लॉक और कोचिया. . . जबकि उसके बगीचे में अभी पौधों के अंकुर ही फूट रहे थे.

इधर जाने क्यों कमलेश के मिजाज चढ़ने लगे थे. अतुल अपने 'होम-वर्क' की कापी उसे दे देता था और वैसे भी वह उसे पढ़ाई में तरह-तरह से मदद करता, किंतु एहसान मानने के बजाए कमलेश कहता—"मैं भी तो तुम्हें अपने बगीचे से पौधे देता हूं. . . हिसाब-किताब बराबर. . ."

इतना तक हो गया कि एक बार जब 'क्रोटन' के पौधे लेने के लिए अतुल उसके घर गया, तो उसने पूछा, "तुमने गणित के सवाल कर लिये?"

"हां, कर लिये," अतुल ने जवाब दिया.

"तो ऐसा करो, पहले कापी ले आओ, फिर पौधे ले जाना. . ."

अतुल कुछ नहीं बोला. अंदर ही अंदर तिलमिला उठा. पर 'क्रोटन' के लालच ने उसका रोष दबा दिया. उसकी आंखों में घूम गया—क्रोटन का पेड़, जो कितना विचित्र होता है, जिसके एक ही पत्ते में तरह-तरह के रंग होते हैं. कमलेश भी कुछ ऐसा ही है—रंग-बिरंगी पत्तियों वाले क्रोटन के पेड़ जैसा!

उस दिन जब अतुल अपने एक दोस्त मिट्ठू को घर पर लाया, तो कमलेश भी साथ में था. अतुल ने मिट्ठू को अपना बगीचा दिखाते हुए कहा, "देखो, यह है मेरा बगीचा. . ."

"पर पौधे मेरे घर के हैं!" तपाक से कमलेश ने कहा.

अतुल ने एक तीखी निगाह कमलेश पर डाली. प्रयत्न के बावजूद भी अतुल अपना भाव छिपा नहीं पाया. उसके चेहरे से उसकी खीझ स्वतः जाहिर हो गई. जब मिट्ठू चला गया, तो अतुल ने कमलेश से कह ही दिया, "क्या तुम्हें ऐसा कहना चाहिए था?"

"क्यों, इसमें गलत क्या है?" अकड़कर कमलेश बोला, "आखिर तुम्हारा बगीचा मेरे बगीचे की 'ट्रू कॉपी' ही तो है! हम पौधे नहीं देते, तो फिर तुम्हारे यहां क्या उगता? यही बरसाती घास, गेंदे के कुछ पौधे या झाड़ियां! हमारे यहां . . ."

"अच्छा—अच्छा, थैंक्यू वेरी मच, जो आपने पौधे दिए. पर लगता है, तुम्हारे घर में अंग्रेजी के फूल ज्यादा हैं."

'अंग्रेजी के फूल! . . . क्या मतलब? वैसे हमारे यहां बहुत से अंग्रजी फूल हैं. . ."

"और एक तुम भी हो. . . फूल यानी एफ डबल ओ एल!"

"अच्छा तो अंग्रेजी फूल से तुम्हारा यह मतलब है!"

"बड़ी जल्दी समझ गए!"

"तो, मियां, अब तुब भी समझ लो. देखना, मैं एक भी पेड़ अपने बगीचे का तुम्हें नहीं दूंगा. कल ही मेरे पापा काले गुलाब का झाड़ लाए हैं. काला-गुलाब . . . बड़ी मुश्किल से मिलता है, तुम्हें कलम दे देता पर . . ."

अतुल के दिमाग में काला-गुलाब छा गया. काले गुलाब ने अपनी कालिमा से अतुल को बेचैन कर दिया. उस दिन यह बेचैनी और बढ़ गई, जब अतुल को मन मार कर कमलेश के यहां जाना पड़ा. उसके पिता जी ने उसे जबर-दस्ती भेजा था कि वह दुबे अंकल से एक किताब ले आए. उस ने पिता जी को समझाने की बहुत कोशिश की कि कमलेश और उसकी कुट्टी है, पर पिता जी ने उसे बचपना न करने को कहा. जब अतुल ने अहाते में प्रवेश किया, तो कमलेश नाक-भौं सिकोड़ कर एक तरफ हो गया. अंकल उस वक्त खुरपी लिये गमले ठीक कर रहे थे. अतुल ने उत्सुकता से एक निगाह बगीचे में डाली और फूलों की सुंदरता को आंखों में भर लिया. सुबह की सुहानी धूप में फूल जैसे खिलखिला रहे थे.

"अतुल, तुम्हारे बगीचे के क्या हाल हैं?" अंकल ने पूछा.

"अच्छे हैं," जब अतुल ने जवाब दिया तो कमलेश ने तीखी नजर उस पर डाली.

"पापा, अपने यहां का काला गुलाब कल

तक खिल जाएगा. कितना मजा आएगा!" कमलेश ने कहा.

अतुल को बात चुभ गई. वह समझ गया कि उसे सुनाने के लिए ही कमलेश ने यह बात कही है. अतुल चुप रहा. यद्यपि वह अंकल से काले गुलाब की एक कलम मांग सकता था. वह यह सोच ही रहा था कि अंकल ने कहा, "हम काला गुलाब लाए हैं—वह देखो. बस, कल तक इसमें फूल आ जाएगा, काला गुलाब बड़ी मुश्किल से मिलता है."

अपने मन में उमड़ रहे प्रवाह को दबाकर अतुल बोला, "अंकल, वो किताब . . ."

●

"अरे हां, कमलेश, जरा मेरी टेबिल से पीले कवर की किताब उठाकर अतुल को दे दो."

कमलेश किताब लेने अंदर चला गया. अतुल फिर बगीचे को देखने लगा—भरी-भरी क्यारियां और बेहिसाब फूल, कतार में जमे हुए गमले, मचान पर फैली हुई बेलें और फिर कोने के गमले में उगा काला गुलाब! एकाएक कमलेश किताब लेकर बाहर आ गया. जब अतुल उससे किताब लेने लगा, तो उसने फुसफुसाकर कहा, "मियां, कोई न कोई बहाना बनाकर मेरे बगीचे में ताक-झांक करने आ ही जाते हो. . . . भिखमंगे कहीं के!"

"चुप करो!" अतुल ने किताब ली और दौड़ता हुआ लौट आया. उसका मन बुरी तरह छटपटा रहा था. जैसे ही वह अपने घर के गेट पर आया, चौंक गया. बगीचे का दरवाजा खुला हुआ था और अंदर गायें घुसी हुई थीं.

अतुल ने आव देखा न ताव, 'फेंसिंग' से एक छड़ी निकाल कर उसने गायों को बेतहाशा पीटना शुरू कर दिया. गायों ने इधर-उधर भागना शुरू किया और उनके पीछे-पीछे अतुल ने. पूरे बगीचे में भगदड़-सी मच गई. जो पौधे शेष बचे थे, वे भी रौंदे गए. जब जानवर चले गए, तो अतुल हांफने लगा. क्रोध और दुःख के कारण उसका गला भर आया. पूरा बगीचा बुरी तरह रौंदा गया था. गमले टूट गए थे. ईंटें उखड़ गई थीं. पौधे टूटकर ऐसे लग रहे थे, मानो रणभूमि में युद्ध के बाद सैनिक मरे पड़े हों. अतुल को लगा, यह सब मारकाट उसके मन के अंदर हुई है.

तब तक घर के और लोग भी बाहर आ गए. मां ने अतुल को संभाला, "अरे, तूने उन बेचारे जानवरों को क्यों मारा ? उनमें क्या समझ होती है? वे तो बस जहां खाने को मिला, वहीं घुस जाते हैं. फिर गलती भी तुम्हारी ही थी. दरवाजा क्यों खुला छोड़ दिया था?"

पापा ने समझाया, "अरे, अब जो हो गया सो हो गया. चलो, फिर नए सिरे से शुरू करना."

अतुल की कुछ भी समझ में नहीं आया. उसने कुछ नहीं सुना. उसे महसूस हो रहा था, जैसे उसके अंदर भयंकर आग लग गई है. उस दिन स्कूल में उसका जरा भी मन नहीं लगा. कोई आग थी जो उसके मन में बराबर सुलगी हुई थी.

●

एकाएक आधी छुट्टी में अतुल के चेहरे पर थोड़ी खुशी दिखाई दी. इसका कारण सिर्फ यह था कि उसके मस्तिष्क में एक नई योजना जन्म ले रही थी. वह मन ही मन अपनी योजना में उलझता हुआ छुट्टी का इंतजार करने लगा. एकाएक योजना की सफलता का दृश्य उसके मस्तिष्क में उभर आया. उसके कुचले गए बगीचे की तरह कमलेश का बगीचा भी रौंद दिया गया है. इस दृश्य को बार-बार याद करके वह हर्षोल्लास में डूबता-उतराता रहा.

शाम होने तक अतुल ने अपनी योजना पूरी कर ली और उसे क्रियान्वित करने के लिए तत्पर हो गया. कमलेश की बातें याद करते हुए उसके होंठ बार-बार भिंचे जा रहे थे. जहां एक ओर वह दृढ़ होने की सोच रहा था, वहीं दूसरी ओर भयाक्रांत भी हो रहा था. इस दुविधा में डोलते हुए वह अंधेरा होने के काफी बाद कमलेश के घर की ओर निकल पड़ा. उसने पुनः सोचा कि उसे क्या करना है? नंबर एक—आसपास सावधानी में देखना है कि कोई आ तो नहीं रहा; नंबर दो—अगर आसपास कोई ढोर चर रहा होगा तो वह उसे कमलेश के बगीचे की तरफ हांक देगा; नंबर तीन—वह भी बगीचे में घुसेगा और क्यारियों को बेरहमी से कुचलेगा और गमलों को औंधा कर देगा; नंबर चार—काले गुलाब का पौधा सुरक्षित अपने साथ ले आएगा, ताकि उसे अपने आंगन में लगा सके.

●

रात का सन्नाटा छा गया. अतुल अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने लगा. कमलेश के घर में सब लोग अंदर थे. ठंड की रात थी, इसलिए रौनक जरा भी नहीं थी. 'फेंसिंग' के पास पहुंचकर अतुल ने इधर-उधर देखा. तभी किसी के आने की आहट हुई. फुर्ती से अतुल वहीं पेशाब करने बैठ गया. जब आदमी निकल गया, तो उसने धीरे से गेट खोला और बगीचे पर नजर डाली. हरियाली के स्थान पर अंधेरा लहरा रहा था. पेड़ जैसे चुपचाप सोए हुए मीठे सपने देख रहे थे.

अतुल सोच में पड़ गया. तभी उसे लगा, जैसे किसी ने उसका हाथ पकड़ लिया है. ठिठककर उसने देखा—एक पेड़ की डाली उसके हाथ पर झूल रही थी, मानो उसे रोक रही हो. सहसा अतुल को लगा, जैसे अचानक दिन हो गया है और बगीचा जगमगा उठा है. फूलों ने उसका घेराव कर लिया है. फूलों के बीच वह भी एक फूल है . . . फूल . . . अंग्रेजी का फूल!

अतुल ने अपने दिमाग को झटका दिया—'मैं भी क्या सोचने लगा!'

तभी दूर से एक कुत्ते के भौंकने की आवाज आई. अतुल सतर्क हो गया. वह काले गुलाब तक पहुंच चुका था. सहसा उसके दिमाग में कौंधा—'जानवर!' मम्मी ने कहा था, 'जानवरों को समझ कहां होती है? वे तो बस जहां खाने को मिले, वहीं घुस जाते हैं.' पर वह तो जानवर नहीं. वह तो सोच सकता है. इन फूलों को कत्ल करने का पाप वह करेगा! उन्हीं फूलों को अब वह कुचलेगा, जिनकी सुंदरता पर मुग्ध हो वह उन्हें घंटों निहारता रहता था! क्या वह जानवरों से भी गया-बीता है! नहीं, कमलेश कांटा है तो होगा. क्या इन फूलों को कुचलकर वह उस कांटे को भी कुचल सकेगा?

इस बार कुत्ता जोर से और देर तक भौंका. अतुल की घबराहट और बढ़ गई—'यह मुझे क्या हो गया है? आया था यहां बदला लेने और अब बहक रहा हूं.'

उसने गुलाब की तरफ हाथ बढ़ाया, हाथ में कांटा चुभ गया. दर्द के साथ अतुल को महसूस हुआ, जैसे चारों तरफ छाया हुआ अंधेरा भड़-भड़ाकर उसके मन में घुस आया है. उसे लगा, जैसे उसके मन की बगिया में मिट्टी की जगह अंधेरा भरा पड़ा है.

उसने फिर कुछ नहीं सोचा और तेजी से लौट पड़ा. घर आकर वह बिस्तर पर लेट गया और अपना सिर पकड़कर अपने आपको कोसने लगा—'मैं कायर हूं. . . डरपोक हूं. . . पर. . . मुझसे फूलों को कुचला नहीं जाएगा. . .'

इसी उलझन में पता नहीं, कब उसे नींद आ गई. जब सुबह नींद खुली, तो काफी दिन निकल आया था. मुंह धोकर वह रोज की तरह बाहर आया तो देखा, बगीचे में पिता जी और दुबे अंकल खड़े थे. वह सहम गया—'क्या कुछ गड़बड़ है? कल रात मैंने कुछ भी तो नहीं किया, अपने मन की बगिया में फैली अंधेरे की मिट्टी में सिर्फ रोशनी के बीज बो लिये थे.'

उसने सुना, दुबे अंकल उसके पिता जी से कह रहे थे, "बड़ा बुरा हुआ, जो आपके बगीचे की यह हालत हो गई है. पर चिंता न कीजिए, कल दोपहर में मुझे अपने ट्रांसफर का ऑर्डर मिला है, यानी यहां से बोरिया-बिस्तर समेट कर उज्जैन जाना पड़ेगा. मैं अपने सारे पौधे और गमले आपको दे जाऊंगा. . . वह काला गुलाब भी, क्योंकि उधर जो क्वार्टर मिलेगा, वहां सब कुछ है."

सुनकर अतुल को लगा, कल रात उसने जो रोशनी के बीज बोए थे, उनमें अंकुर फूट आए हैं!

●

20/2 अमीर गंज, भोपाल (म.प्र.)

शीर्षक प्रतियोगिता नं. 31
परिणाम

पुरस्कार विजयी शीर्षक :
"सुरों के सिलसिले;
तालों के दायरे."

प्रेषक :
सुधाकर झा, द्वारा श्री के.के. झा,
मकान नं. 21, रोड नं. 11,
राजेंद्रनगर, पटना-16 (बिहार).

अन्य प्रशंसित शीर्षक :

- जस दूल्हा तसि बनी बराता.
  कौतुक विविध होहिं मग जाता.
  —पूनम श्रीवास्तव, पीलीभीत.
- उड़ चली उम्र लेकर बचपन,
  पग थिरक उठे, आया यौवन.
  —रंजन हजेला, कानपुर.
- भैया बने दूल्हा,
  हम मटकाएं कूल्हा.
  —मोहन जोशी, उदयपुर.
- देसी मुर्गी, विलायती चाल,
  वाह रे वा' मेरे बांके लाल.
  —स. रतनपालसिंह खनूजा, आरा.
- नई उमर की नई फसल.
  —रुद्रप्रसाद सिंह, पन्ना.
- जिंदगी के मोड़ पर पहला कदम.
  —किशोर पांडुरंग जी हजारे, नागपुर.

छाया : आर. के. गोयल

शीर्षक प्रतियोगिता—34

ऊपर के चित्र को देखिए और जरा सोचकर इसका एक बढ़िया और फड़कता हुआ शीर्षक बताइए. अपने शीर्षक सबसे अलग पोस्ट कार्ड पर लिखकर हमें 20 दिसंबर तक भेज दीजिए. सबसे बढ़िया शीर्षक पर 15 रुपये मूल्य की पुस्तकें पुरस्कार में मिलेंगी. हां, कार्ड पर अपना नाम और पता लिखना मत भूलिए, शीर्षक के कार्ड इस पते पर भेजिए :
संपादक 'पराग' (शीर्षक प्रतियोगिता-34), 10, दरियागंज, दिल्ली-6.

kissekahani.com

पुराणमल नवकुमार

शेखर

क्यों भेजा खाते हो, यार! तुम्हें कुछ आता-जाता तो है नहीं— मैंने ऐसे ठीक उत्तर दिए हैं कि उस की मिस खुश हो जाएगी— ही, ही, ही!
हाय!
क्या मतलब?
अरे वह ऐसी सुन्दर है कि... हाय! काश मैं उस के पास पढ़ता होता!
अच्छा, तो यह बात है
दूसरे दिन स्कूल में मुन्ना था और बाहर नवकुमार...
मुन्ना, तुम्हारे उत्तर तो बड़े शानदार हैं, भई!
वाह!
मिसजी, घर पर मुझे एक बहुत अच्छे टीचर मिल गए हैं इसी कारण मैं ऐसे अच्छे उत्तर दे पाया हूं!
खूब! मुझे उनसे मिलाओ, वह तो देखने की चीज हैं!
अरे वह क्या मिलाएगा, मैं तो स्वयं आप की शरण में आ गया हूं!
?!
सहसा...
क्या बात है? मुझ से बोलो मैं हेड मास्टर हूं!
अररर!
क्या कुछ गड़बड़ है? मुझे भागना चाहिए!
यह मुन्ना को घर पर पढ़ाते हैं— जरा मुन्ना के कुछ उत्तर देखिए!
हुं! आप मुझे पीट क्यों रहे हैं? अररर! बचाओ!
गधे, तुम ने उत्तर दिलवाया है कि सम्राट अशोक पर पांच सौ आदमी बैठ सकते हैं और यह भारत का नया विमान है!
बचाओ!
और तुम्हारे दूसरे उत्तर म्युज़ियम में रखने काबिल हैं!

नगर नगर में घूमता आईना—

भारतीय किशोर जीवन

kissekahani.com

भारतीय किशोर जीवन के आकलन की जब मैं अपनी दूसरी किस्त लिखने बैठा हूं, तो वातावरण एक खास तरह के तनाव से भरा हुआ दिखाई दे रहा है. वैसे दिल्ली की फ़िज़ा तरह-तरह की खबरों से हमेशा गर्मा-गर्म रहती है. कनाट प्लेस पर हमारे तिरंगे झंडे के साथ एक और झंडा झूलता हुआ हमें आए दिन दिखाई देता है. और हम अनायास मान लेते हैं कि आज फिर कोई विशिष्ट विदेशी अतिथि आ रहा है. कुछ अतिथियों से दिल्ली की जनता परिचित होती है. उनके आगमन पर वह थोड़ी-बहुत रुचि भी दिखाती है. उदाहरण के लिए योगोस्लाविया के राष्ट्रपति टीटो कुछ दिन पहले ही भारत की यात्रा पर थे. परंतु कुछ अतिथियों के बारे में वह पहली बार सुनती, पढ़ती या देखती है. 'देखती है' मैंने इसलिए लिखा है क्योंकि आज दिल्ली में चालीस-पचास हज़ार टेलीवीज़न सेट हैं और नगर में होने वाली कोई भी महत्त्वपूर्ण घटना उसी दिन शाम को लोग सुनते हुए देख भी लेते हैं. इसी तरह के एक विशिष्ट अतिथि को अभी कुछ दिन पूर्व दिल्ली के लोगों ने पालम हवाई अड्डे पर विमान से उतरते देखा. उनके स्वागत के लिए राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधान मंत्री, विदेश मंत्री आदि सभी खड़े थे. सेना के तीनों अंगों की टुकड़ियों की उन्होंने सलामी ली. पता लगा कि यह टोंगा के नरेश हैं. बहुत सिर-खपाई करने पर भी मैं दुनिया के नक्शे पर इस देश को ढूंढ़ तो नहीं सका, पर उसका अनुमान मात्र लगा सका. और यह सुनकर कुछ मज़ा भी आया और कुछ कोफ्त भी हुई कि उस देश की पूरी जनसंख्या हमारे करौल बाग की जनसंख्या से भी कम है!

और फिर आम दिनों में दिल्ली की दीवारों पर जो 'पोस्टर वार' छिड़ी रहती है उसका तो कहना ही क्या! दिल्ली में लगे पोस्टरों की भाषा और विषय-वस्तु पर ही दस-बीस शोध-प्रबंध लिखे जा सकते हैं.

परंतु मैं बात कर रहा था आजकल के तनाव की, जिसके विषय में प्रधान मंत्री से लेकर छोटे-बड़े सभी मंत्री खूब जोर-शोर से बोल रहे हैं (कर कितना रहे हैं, ये वही जानें) और सभी के सामने यह प्रश्न उभरा हुआ है कि क्या पाकिस्तान से हमारा युद्ध छिड़ने वाला है?

●

मेरे सामने सुनीता, रानी और आभा बैठी हुई हैं. तीनों सेकेंड इयर आनर्स की छात्राएँ हैं. मैं पूछता हूँ—"यदि पाकिस्तान से हमारी लड़ाई छिड़ जाए, तो तुम पर इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी?"

सुनीता झट से कहती है—"ऐसे समय में जनता को सरकार का पूरी तरह साथ देना चाहिए."

आभा कहती है—"हमें आपसी झगड़े भुलाकर एक हो जाना चाहिए."

रानी भी कुछ कहने को होती है, मैं उसे रोक देता हूँ और कहता हूँ—"तुम कहोगी, हमें फौज में भरती हो जाना चाहिए. देखो, ये बड़े-बड़े सिद्धांत-वाक्य बोलना बंद करो. ऐसी भाषा बोलने वाले पेशेवर नेताओं की कतार हमारे देश में बहुत लंबी है. बोलो, तुम क्या करोगी—सुनीता, रानी या आभा होने की हैसियत से?"

तीनों लड़कियाँ कुछ क्षण के लिए गुमसुम रहती हैं. हमारे 'आध्यात्मिक' और 'आदर्शवादी' देश में 'चाहिए' वाली भाषा तो हमें घुट्टी में मिलती है, लेकिन 'करने' वाली भाषा सब लोग अपनी-अपनी सुविधा से सीखते हैं.

रानी कहती है—"मैं घायल सैनिकों के लिए रक्त-दान करूँगी. मैं नर्सिंग का काम सीखकर उनकी सेवा भी करूँगी."

सुनीता कहती है—"मुझे पचास रुपये महीना जेब-खर्च मिलता है. उसमें से तीन चौथाई राष्ट्रीय

सुनीता बुद्धिराजा

रानी सक्सेना

आभा वाजपेयी

भारतभूषण

आलोक मित्तल

आकलनकर्ता : डा. महीपसिंह

-एक आकलन

किशोर जीवन के आकलन का नगर नगर में घूमता यह दर्पण पिछले महीने से दिल्ली की ओर रुख किए हुए है. गतांक में आप ने दिल्ली के किशोरों की कुछ-एक झलकियां देखीं. अब प्रस्तुत हैं दूसरी किस्त के अंतर्गत कुछ और तस्वीरें, कुछ और चेहरे. दिल्ली के बिखरे हुए विस्तार को इस दर्पण में समेट रहे हैं डा. महीप सिंह.

अपने इस अछूते स्तंभ पर हमें हर छोटे-बड़े नगर से प्रति दिन सैकड़ों प्रशंसा-पत्र प्राप्त हो रहे हैं, और साथ में उलाहने व अनुरोध भी ! हमारे उपालंभी मित्र आश्वस्त रहें—यदि यह दर्पण भारत के छोटे नगरों के प्रतिबिम्ब प्रस्तुत नहीं कर सका, तो अधूरा ही कहलाएगा न! इस लिए समर्थ आकलनकर्त्ता इसके लिए सादर आमंत्रित हैं.

—संपादक

रक्षा-कोष में दूंगी." आभा की समझ में नहीं आता कि वह क्या कहे.

बाद में जब मुझे भारतभूषण, आलोक और विनोद मिले, तो मैंने यही प्रश्न उनसे भी किया. इस दृष्टि से लड़कों की जागरूकता लड़कियों से निश्चित ही अधिक दिखाई दी. उनका दृष्टिकोण भी अधिक यथार्थवादी है. भारतभूषण का मत था कि लड़ाई की धमकियाँ पाकिस्तान का सिर्फ एक 'पोलिटिकल स्टंट' है. वह सिर्फ यह दिखाना चाहता है कि बांगला देश की घटनाओं के बाद भी वह लड़ाई के काबिल है.

आलोक कहता है कि पाकिस्तान किसी तरह की शरारत करेगा, इसकी उम्मीद बहुत कम है. बांगला देश की मुक्ति वाहिनी से उसकी कमर टूट चुकी है.

मैं कहता हूं—"मान लो लड़ाई छिड़ ही जाए, तो तुम क्या करोगे?"

विनोद कहता है—"युद्ध के समय हम पुलिस की सहायता करेंगे. पुलों, अस्पतालों तथा अन्य महत्वपूर्ण स्थानों पर हम पहरा देंगे और उनकी रक्षा करेंगे."

आलोक कहता है—"हमारा एक आर्केस्ट्रा है. हम उसके प्रोग्राम देंगे; उससे धन जमा करके सुरक्षा कोष में देंगे."

मैंने पूछा—"आर्केस्ट्रा में तुम क्या बजाते हो?"

वह बोला—"गिटार और माउथ ऑरगन."

विनोद ने बताया कि वह अपने कालेज की सोशल सर्विस का लीडर है. पिछले दिनों उसके साथ पच्चीस विद्यार्थी दिल्ली के पास के एक गांव हैदरपुर में सोशल सर्विस के लिए गए थे. वहां वे लोग सात दिन रहे.

मैंने पूछा—"वहां तुम लोगों ने क्या काम किया?"

"हम लोगों ने वहां एक गड्ढा भरा."

"और . . . ?"

"और कुछ नहीं."

मैंने पूछा—"तुम लोग वहां रोज कितने घंटे काम करते थे?"

वह बोला—"आठ घंटे."

मैंने कहा—"वाह रे बहादुर जवानो, पच्चीस लोगों ने आठ घंटे रोज काम करके सात दिन में गड्ढा भरा. तब तो देश की खूब सेवा करोगे!"

विनोद शर्माया-सा यही कहे चला जा रहा था—"सर, वह गड्ढा बहुत बड़ा था!"

जब मैं इन लड़कों से बातचीत कर रहा था, दो और लड़कियां भी वहां आ गईं—स्वर्ण बिस्वाल और बीना स्वामी. स्वर्ण उड़ीसा की रहने वाली है और बीना राजस्थान की.

स्वर्ण ने कहा—"मैं बी.ए. करने के बाद हिंदी में एम. ए. करूंगी. उड़ीसा में हिंदी-प्राध्यापकों की बड़ी कमी है."

मैंने देखा है, लड़कियों में अध्यापन कार्य के प्रति काफी आकर्षण है. सुनीता, रानी और आभा ने भी अध्यापन-कार्य अपनाने की अपनी इच्छा व्यक्त की थी. खासतौर से अध्यापन-कार्य यदि कालेज में मिल जाए तो क्या कहने.

मध्यम वर्ग से आने वाली लड़कियों को, विशेष रूप से उसके अभिभावकों को टीचिंग एक 'रेस्पेक्टेबल जॉब' मालूम पड़ता है. परंतु आभा इस बात को मानती है कि कोई भी ऐसा काम नहीं है जो पुरुष कर सकते हों और नारी नहीं. परंतु वह एयर होस्टेस बनने से भी घबराती है.

मैंने पूछा—"अच्छा यदि तुम्हें फिल्मों में काम करने का अवसर मिले?"

पता नहीं क्यों सुनीता, रानी, आभा, स्वर्ण, बीना सभी इनकार कर देती हैं. सभी को फिल्म देखने का तो शौक है परंतु उस क्षेत्र के संबंध में अभी भी उनकी धारणा है कि यह सम्मानजनक नहीं है और वहां काम पाने के लिए बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है. 'पराग' के पिछले अंक में प्रकाशित अभिनेत्री नाज़िमा का इंटरव्यू भी शायद सभी ने पढ़ रखा था. सुनीता कहती है—"मुझे ऐक्टिंग का शौक तो है, कई नाटकों में मैं भाग भी ले चुकी हूं, परंतु मैं समझती हूं कि अध्यापन या पत्रकारिता में सफल हो सकती हूं."

बीना को लेडी डाक्टर या एडवोकेट बनना लड़कियों के लिए अधिक उपयुक्त लगता है. वह आर्ट्स की छात्रा है. डाक्टर बनने का तो प्रश्न ही नहीं है, पर एडवोकेट बनने का अवसर तो उस के सामने है ही. परंतु बीना कहती है कि उसकी ज्यादा रुचि डिज़ाइनिंग और पेंटिंग में है. वह आयल पेंटिंग, फैब्रिक पेंटिंग और बाटिक सभी तरह की पेंटिंग करती रहती है. उस का स्वप्न है कि किसी दिन वह अपने तैल चित्रों की एक प्रदर्शनी करेगी.

तीनों लड़कों में सिर्फ आलोक ऐसा है जिस ने अपना मार्ग अभी से पूरी तरह निश्चित कर

(शेष पृष्ठ 40 पर)

विनोद तागपाल

स्वर्ण बिस्वाल

बीना स्वामी

kissekahani.com

कहानी

कर्नल की घोड़ी

वीरकुमार 'अधीर'

कर्नल की घोड़ी भी क्या कोई मामूली चीज होती है! गोया घोड़ी भी घोड़े-घोड़ियों में कर्नल थी! और कर्नल का कुत्ता भी कोई धोबी का कुत्ता न था जो 'घर का न घाट का' होकर रह जाता! कुत्ता क्या था, बस शेर का सहोदर समझिए; बल्कि बकौल कर्नल साहब, कुत्ते की खूबियां घोड़ी से भी ज्यादा थीं, इसलिए अगर घोड़ी को कर्नल के ओहदे से सम्मानित किया गया, तो कुत्ते को ब्रिगेडियर से कम दर्जा कैसे दिया जा सकता था! कर्नल साहब को अपनी कर्नल घोड़ी और ब्रिगेडियर कुत्ते से बड़ा प्रेम था. और प्रेम ही नहीं था, उनपर घमंड भी था. और केवल घमंड ही होता, तो भी कोई बात न थी; कर्नल साहब जब-तब शाम की महफिलों में मित्रों के बीच अपनी घोड़ी और कुत्ते की तारीफों के पुल भी बांधा करते थे. और पुल यहां तक बांधे जाते कि सुनने वाला सुनते-सुनते बोरियत की हदों तक जा पहुंचता और बालेखां का सब्र टूट जाता.

बालेखां का नाम सुनकर चौंकें नहीं. बालेखां यानी कर्नल साहब के मित्रों की महफिल का सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण सदस्य. महत्त्वपूर्ण इसलिए कि कर्नल साहब जब इस नगर में तशरीफ लाए थे उनका सबसे पहला मित्र बालेखां ही बना था और शायद ही कोई ऐसी मनहूस शाम गुजरी हो, जिस दिन कर्नल साहब की महफिल में बालेखां रौनक-अफ़रोज न हुए हों. यों इस महफिल में शामिल होने वाले और भी बहुतसे सदस्य थे, पर बालेखां की बात ही कुछ और थी. अपनी चुग्गी दाढ़ी को खुजला-खुजलाकर जब बालेखां जीभ की कैंची चलाता, तो स्वयं कर्नल साहब भी कटकर रह जाते! लेकिन बालेखां तब-तब बेहद बोर होता, जब तरंग में आकर कर्नल साहब अपनी घोड़ी और कुत्ते की प्रशंसा में व्याख्यान आरंभ करते. यानी कुत्ता क्या है, बस कुछ न पूछिए; और घोड़ी का भी क्या कहना है!

●

कर्नल साहब ने फरमाया, "जनाब, दावा है इस बात का कि दूर-दूर तक मुल्क भर में इस कदर चुस्त और बांकी घोड़ी नहीं मिल सकती!"

"जी हां, जी हां!" बालेखां आदतन अपनी दाढ़ी खुजलाकर बोले, "आप सही फरमाते हैं, कर्नल साहब, लेकिन खयाल तो कीजिए, आप अपनी घोड़ी के खुद ही दुश्मन हो रहे हैं!"

"क्या मतलब!" कर्नल साहब चौंके.

"मतलब यह, कर्नल साहब, अगर किसी ने आपकी घोड़ी की सारी खूबियां जान लीं, तो?"

"तो क्या?" कर्नल साहब ने पूछा.

"तो वह निश्चित ही आपकी घोड़ी को खोल ले जाएगा और फिर आप जानते ही हैं कि आपकी घोड़ी पर हाथ साफ हुआ, तो यह बेमिसाल चीज आसानी से हासिल नहीं होगी."

"बहुत खूब!" कर्नल साहब ने ठहाका लगाया और जांघ पर हाथ मारते हुए बोले, "बालेखां, यही तो मैं कह रहा था कि मेरे बुलडॉग 'टामी' के बारे में तुम जानते ही नहीं. घोड़ी चुराने के लिए कोठी में दाखिल होने की बात तो दूर, कोठी के आस-पास भी कोई नजर आ जाए, तो मेरा चौकीदार पट्ठा भुरता बनाकर कर रख दे. क्या समझे!"

"समझा, कर्नल साहब! लेकिन जब किसी की नीयत खराब हो जाती है, तो किसी का जोर नहीं चलता. कुत्ते-बिल्ली तो दरकिनार, बड़े-बड़े चौकीदार भी बुरे वक्तों में सपने देखने लगते हैं!"

"क्या बकते हो, बालेखां? तुम हमारे टामी की बेइज्जती कर रहे हो!" कर्नल साहब गर्व भरे शब्दों में बोले, "अगर इस तरह कोई हमारी घोड़ी चुरा ले जाए, तो हम उसे दो हजार रुपये नकद इनाम दें!"

"लिल्लाह, ऐसा न कहिए, कर्नल साहब! दीवारों के भी कान होते हैं. किसी ने सुन लिया तो सचमुच किस्मत आजमाने लग जाएगा!" बालेखां ने मजाक के लहजे में कहा.

"नहीं, बालेखां, हम मजाक नहीं करते, हम खुले आम चैलेंज करते हैं," कर्नल साहब बोले.

"अच्छा, जनाब, आपकी बात मान ली कि आपकी घोड़ी अव्वल और आपका कुत्ता दोयम. पर खुदा के लिए अब इजाजत दीजिए, क्योंकि ऐसा लगता है, अब आपके पास बात करने को कुछ बचा नहीं." बालेखां उठे और 'वालेकुम सलाम!' कहकर कमरे से बाहर हो गए.

फिर लगभग एक सप्ताह गुजरा कि एक भयंकर घटना हो गई. इस बीच रोजमर्रा की तरह कर्नल साहब के निवास स्थान पर शाम की महफिल जमती और बालेखां के चुटकुले ठहाकों से भरपूर महफिल में रौनक बांधते. परंतु उस दिन सुबह-सुबह बालेखां चौंक पड़े, जब बदहवासी की हालत में कर्नल साहब ने उनके मकान का दरवाजा खटखटाया.

"किबला कर्नल साहब! आप और इतने सवेरे?" चौंककर बालेखां ने पूछा.

"बालेखां, गजब हो गया!" कर्नल साहब बुरी तरह हांफते हुए बोले.

"क्या गजब हो गया, कर्नल साहब? कुछ

फरमाइए तो सही," बालेखां ने आंखें फाड़कर पूछा.

"अरे भई, घोड़ी गायब हो गई!" कर्नल साहब माथे पर हाथ मारकर पास पड़ी कुर्सी पर धम्म से इस प्रकार बैठ गए, मानो तकदीर फूटने का रोना रो रहे हों.

बालेखां यह सुनकर बुरी तरह चौंक पड़े, "क्या कहते हैं, कर्नल साहब! कानों पर यकीन नहीं हो रहा है! और बुलडॉग ने चोर को घोड़ी ले कैसे जाने दी?"

"अरे भई, यही तो कमाल है कि चोर घोड़ी के साथ-साथ अपने टामी को भी उड़ा ले गया!"

"तौबा-तौबा! सच्च!" आश्चर्य से आंखें फाड़ते हुए बालेखां बोले, "यानी चोर भी पक्का खिलाड़ी रहा होगा, कर्नल साहब, जो घोड़ी और आदमखोर बुलडॉग को गाय-भैंस की तरह हांक ले गया!"

"चुप करो, बालेखां, यहां जान को बन रही है और तुम्हें मजाक सूझा है. तुम्हें पता है, टामी को मैंने अपने हाथों से पाल-पोस कर बड़ा किया था," कर्नल साहब लगभग रोनी आवाज में बोले, मानो उनका अपना बेटा खो गया हो. उनका गला भर आया.

"मगर, कर्नल साहब, यह सब हुआ कैसे?" बालेखां ने पूछा.

"जैसे भी हुआ हो, बालेखां, मेरी किस्मत खराब थी जो यह दिन देखना पड़ा. रात दोनों को सही-सलामत छोड़ा था. सवेरे उठा तो देखा कि टामी जो रोज आदतन मेरे उठने पर पूंछ हिलाता हुआ मेरे पांवों के इर्द-गिर्द फुदकता था, नदारद था. मैं कमरे से बाहर आया तो सब सूना-सूना लगा. कुछ ही देर बाद पता चला कि घोड़ी भी गायब है. परंतु टामी भी गायब हो सकता है, इसकी बाबत मैं सोच भी नहीं सकता था. पर लाख ढूंढ़ने पर भी टामी नहीं मिला और अब मैं सीधा तुम्हारी तरफ आ रहा हूं. सोचता हूं, पुलिस में रिपोर्ट लिखवा दूं."

"ग़लत, बिलकुल ग़लत!" बालेखां गंभीर होकर बोले, "कर्नल साहब, अगर आपने पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करवाई, तो आपकी घोड़ी हरगिज आपको न मिलेगी. अव्वल तो घोड़ी को चोर कभी का मीलों दूर हांक ले गया होगा और अगर आपके सौभाग्य से यहीं कहीं हुआ, तो पुलिस की खबर सुनते ही उड़नछू हो जाएगा. फिर भी, अगर पुलिस ने पकड़ा-धकड़ी कर ही ली, तो आगे आप जानते हैं कि देश में रिश्वत-खोरी का प्रचलन दहेज प्रथा से भी ज्यादा बढ़ गया है. पुलिस निश्चित ही इस चोरी के मामले में चोर की रक्षक बनकर उसके भागकर बच निकलने का पर्याप्त इंतजाम करेगी. बेहतर होगा, अगर आप अपनी पिछली घोषणा के मुताबिक दो हजार रुपए नकद इनाम की बात पर अमल करें और अखबार में विज्ञापन निकलवा दें कि हम उस चोर की चालाकी व बुद्धिमानी से बेहद प्रभावित हुए हैं जो हमारी घोड़ी के साथ-साथ चौकीदार कुत्ते को भी उड़ा ले गया है, और इसी लिए हम घोषणा करते हैं कि यदि चोर स्वयं आकर हमारी दोनों चीजें लौटा दे, तो हम उसे दो हजार रुपये नकद इनाम देंगे. चोर के विरुद्ध किसी किस्म की कार्यवाही नहीं की जाएगी."

"इससे क्या चोर स्वयं उपस्थित हो जाएगा जेल की कोठरी में जाने के लिए?" कर्नल साहब ने पूछा.

"गलत! इसके बाद आपका नैतिक कर्तव्य हो जाता है कि आप चोर को दो हजार रुपये इनाम दे दें और अपनी घोड़ी व कुत्ता उससे वापस ले लें," बालेखां ने सुझाव दिया.

●

योजनानुसार, जिस दिन अखबार में विज्ञापन प्रकाशित हुआ, उससे अगले दिन ही सवेरे-सवेरे कर्नल साहब जब चाय पी रहे थे, खिड़की में से उन्होंने देखा, टामी फर्राटे भरता हुआ उनकी कोठी के लॉन में दाखिल हुआ और फिर भागता हुआ सीधा उनके कमरे में चला आया और उनके पांव चाटने लगा. कर्नल साहब

कहानी

आंसू और मुस्कान

kissekahani.com

टूर पर जाने की घोषणा से कक्षा में जहां हर्ष की लहर दौड़ गई, वहां विवाद भी उठ खड़ा हुआ. विवाद का कारण मामूली-सा था. उसे कोई भी व्यक्त नहीं कर सकता था, क्योंकि वह मनोवैज्ञानिक कारण था, सभी उसे अनुभव करते थे.

वास्तव में बात यह थी कि कक्षा में सुजन और प्रदीप के अलग-अलग गुट थे. दोनों की टोली में काफी सदस्य थे. गुटबाजी के मूल में भी एक कारण था. वह यह कि कक्षा में दो लड़कियां थीं—शुभा और आभा. दोनों ही सुजन के गुट में थीं, इसी कारण प्रदीप सुजन से चिढ़ता था. उसने सुजन के खिलाफ़ अपना अलग दल बना लिया था. जब-तब विवाद करके दोनों दलों के लड़के एक-दूसरे की बखिया उधेड़ते थे.

इस समय विवाद का कारण बने हैड मास्टर साहब. कक्षा के साथ हैड मास्टर साहब जाने वाले थे. परंतु प्रदीप के गुट को इसमें सख्त आपत्ति थी. वे अपने क्लास-टीचर को साथ ले जाने के पक्ष में थे. क्लास-टीचर भी इसी पक्ष में थे. टूर पर जाने की उनकी अपनी भी इच्छा थी. उन्होंने ही प्रदीप को शह दी थी कि वह लड़कों को उनके पक्ष में तैयार करे और उनका नाम मार्गदर्शन हेतु जाने के लिए सुझाए.

क्लास-टीचर ने जब यह घोषणा की कि कल टूर पर जाना है और मार्गदर्शन हेतु उनके साथ हैड मास्टर साहब जाने वाले हैं, तो प्रदीप ने फौरन खड़े हो कर कहा, "आप चलिए न, सर, हैड मास्टर बेचारे बहुत बूढ़े हैं; नाहक परेशान होंगे."

"हां-हां, सर, आप ही चलिए." वर्मा ने प्रदीप का समर्थन किया.

सुजन कब चुप रहने वाला था. उन्होंने तो सदा से ही एक-दूसरे का विरोध करना सीखा था. झट से खड़ा होकर बोला, "भई, आम खाने से मतलब या पेड़ गिनने से?" फिर उसने क्लास-टीचर की ओर मुड़कर कहा, "सर, चाहे जो चले; इससे हमें क्या. पर कल चलें अवश्य."

प्रदीप चिढ़ गया. उठकर बोला, "मेरे अच्छे दोस्त ने शायद कभी आम नहीं खाए, सिर्फ गुठलियां ही गिनी हैं. तभी तो ऐसी बातें करते हैं. फिर भी मैं पूछूंगा कि एक बूढ़े आदमी को व्यर्थ परेशान करने में क्या लाभ है?"

शुभा बड़ी चुलबुली और बातूनी लड़की थी. अपने थुल थुल शरीर को यों वह बड़ी मुश्किल से संभाल पाती थी, लेकिन फिर भी बड़ी फुर्तीली और तेज-तर्रार थी. वह झट से उठकर खड़ी हो गई और बोली, "इसका फैसला बूढ़े आदमी खुद कर लेंगे. तुम बेकार उनकी चिंता करके दुबले क्यों होते हो! तुम्हारी राय किसने मांगी, जो तुम बेकार का विवाद बढ़ाते हो?"

"शेम, शेम . . .!" प्रदीप के पक्ष से मनोहर ने उठकर कहा, "शुभा जी, आप बीच में कूदकर क्यों अपना स्वास्थ्य हल्का करती हैं! खैर, आपकी कीमती राय के लिए शुक्रिया. अपने आसन पर बिराजिए और अपनी सांस दुरुस्त कीजिए, जो धौंकनी की तरह चल रही है!" मनोहर यह कहते हुए खुद हांफने लगा था, वह भी शुभा का ही दूसरा संस्करण था.

इस पर सारी क्लास हंस पड़ी. मास्टर जी भी मुस्कराए.

अंत में काफी विवाद के बाद तय हुआ कि दोनों पक्ष पर्चियों पर 'हैड मास्टर या क्लास टीचर' लिखकर एक डिब्बे में डालें और जिसे भी अधिक मत मिलें, वही साथ जाए.

उस दिन कक्षा में कुल बीस छात्र उपस्थित थे और उनमें मेरी उपस्थिति सब से महत्त्वपूर्ण थी. कारण, कि मैं सदा गुटबाजी से ऐसे अलग रहता था, जैसे भारत अंतर्राष्ट्रीय मामलों में तटस्थ रहता है. मैं दोनों दलों में समान रूप से लोकप्रिय था और कभी कोई खास विवाद हो जाता तो मैं ही मध्यस्थ बनकर फैसला किया करता था.

मैंने मन ही मन गणना कर ली. बीस लड़कों में से दस तो सुजन की ओर थे, जिन में आभा और शुभा भी शामिल थीं और शेष नौ लड़के प्रदीप की ओर थे.

इस कारण दोनों नेताओं, यानी सुजन और प्रदीप की नजरें मुझ पर लगी हुई थीं, क्योंकि इस नाजुक स्थिति में वे मेरे महत्व को जानते थे.

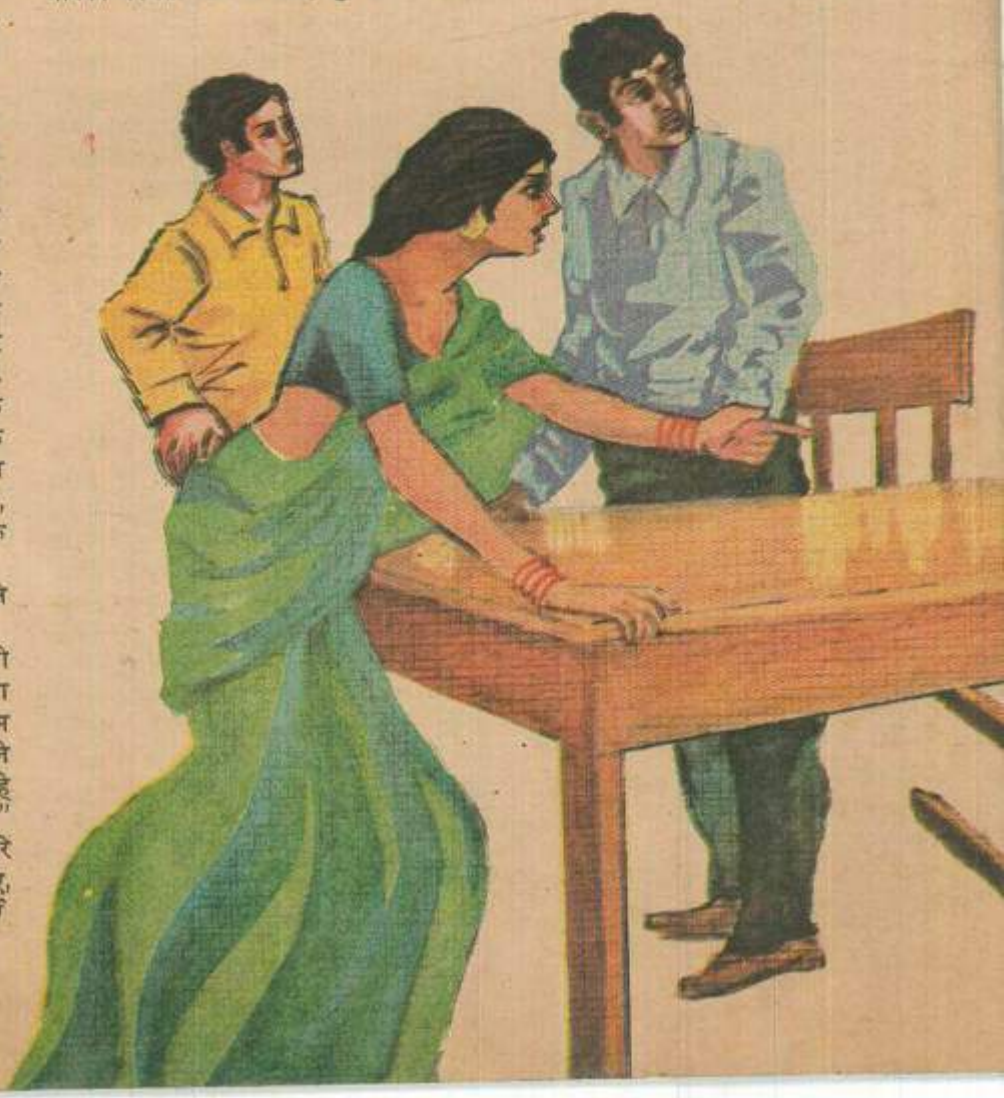

मैं अभी तक अपने को तटस्थ रखे हुए था. प्रदीप के गुट में तो मैं मिलना नहीं चाहता था और सुजन के गुट में मिलने में मुझे कोई आपत्ति नहीं थी. पर इसमें एक अड़चन थी. कुछ दिन पहले मेरा झगड़ा आभा से हो गया था और चूंकि आभा सुजन के गुट में थी, अतः जब तक खुद आभा ही मुझे अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न नहीं करेगी तब तक मैं सुजन को वोट नहीं दूंगा. ऐसा मैंने सोच लिया था.

मास्टर जी कुछ देर के लिए बाहर चले गए. उनके बाहर जाते ही क्लास में शोरगुल मच गया. ठेठ राजनीतिज्ञों की भांति चुनाव प्रचार होने लगा.

सुजन और प्रदीप मेरे पास आए.

"तुम्हारी क्या राय है?" दोनों ने पूछा.

"तटस्थ," मैंने कहा.

"ऐसे नहीं चलेगा."

"दबाव डालोगे?"

"नहीं, दबाव क्यों डालूंगा? जानता हूं कि वोट के लिए दबाव डालना गैरकानूनी है."

"फिर?" मैंने कहा, "मैं अपना वोट ही नहीं दूंगा."

"यह नहीं होगा."

"तो सोचूंगा."

"कब तक?"

"अंतिम क्षणों तक," मैंने कह दिया तो वे एक क्षण निरुत्तर रह गए.

मेरी नजर दोनों लड़कियों पर टिकी थी. वे दोनों खुसर-पुसर कर रही थीं और बार-बार मेरी ओर देख रही थीं. इतना तो मैं समझ गया कि उनकी चर्चा का विषय मैं ही हूं, पर यह नहीं समझ पाया कि कौन मेरे पक्ष में है, कौन विपक्ष में.

आभा की और मेरी अच्छी दोस्ती थी. यही नहीं, वरन् वह मेरे पड़ोस में भी रहती थी और जब-तब स्कूल के काम के लिए मेरे आगे नाक रगड़ती थी. मैं खुश होता था और उसे चिढ़ाने में मुझे आनंद आता था. इस लिए मैं उसे अधिक से अधिक परेशान करके उसका काम

यादराम रसेन्द्र

किया करता था.

मगर पिछले दिनों हमारी कक्षा में प्रवीण नाम का एक लड़का आया था. उसने आते ही कक्षा पर अपनी योग्यता की धाक जमा दी थी, और खुद सुजन के गुट में मिल गया था. खैर, यहीं तक बात होती तो गनीमत थी, परंतु अब बात आगे बढ़ गई थी. कारण कि वह आभा के बहुत पास बैठता था और आभा भी उसके सामने मुझे कोई महत्त्व नहीं देती थी. और यही बात मुझे बुरी तरह अखरती थी. नतीजा यह हुआ कि मैं छोटी-छोटी बातों पर भी उससे झगड़ने लगा. धीरे-धीरे यहां तक हुआ कि उसने मुझसे बोलना तक बंद कर दिया और एक दिन हमारी बाकायदा कुट्टी हो गई.

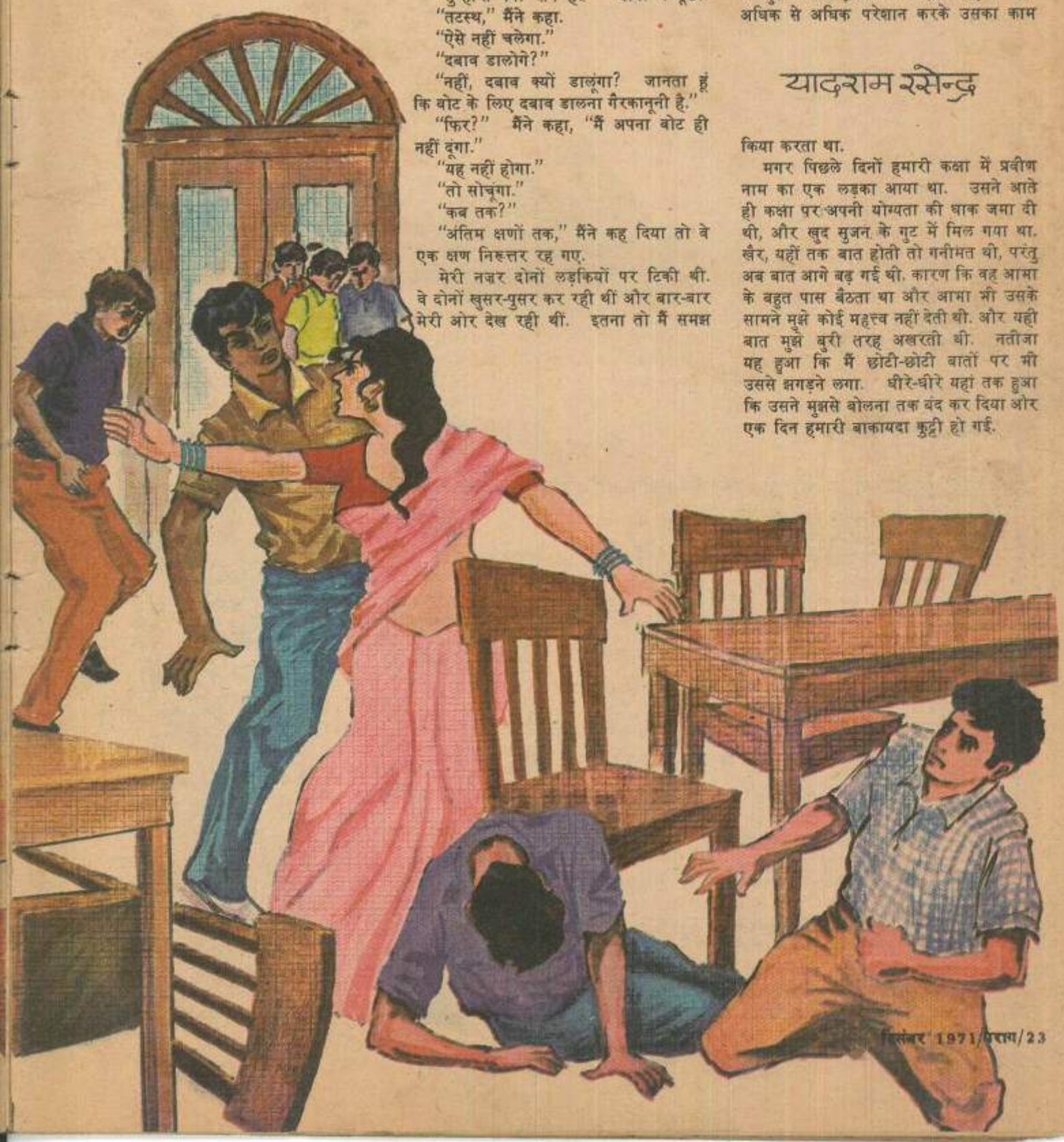

तभी मैंने नजर उठाकर देखा तो पाया कि शुभा मेरी मेज के आगे खड़ी है और आभा भी कनखी से मुझे देख रही है.

"तुम किसे वोट दोगे?" शुभा ने पूछा.

"किसी को भी दिया जा सकता है . . . लेकिन यह बात तो हमेशा गोपनीय रखनी चाहिए!" मैंने एक श्रेष्ठ मतदाता का रुख अपनाया.

"खैर, मत बताओ, तुम्हारी मर्जी. पर अपने दल का प्रचार करना हमारा कर्त्तव्य है."

"यह तुम्हारे अपने शब्द हैं या सहेली के रटे-रटाए वाक्य बोल रही हो?"

शुभा एक क्षण मौन रही. उसके चेहरे से मैं समझ गया कि आभा भी यही चाहती है और उसी ने इसे यहां भेजा है. फिर भी मैंने जरा कठोरता का रुख अपनाया और कहा, "तू क्यों परेशान होती है, अपनी सहेली से कह देना कि मुझे उसकी सलाह की जरूरत नहीं है."

मेरा दिल कहता था कि यही मौका है, जब हमारा राजीनामा संभव है, वरना पिछले कई हफ्तों से बराबर आमना-सामना होते हुए भी हम एक-दूसरे से कतराते रहे हैं. अब अधिक सहन करना मेरे लिए संभव नहीं था और मैं यह जानता था कि आभा भी यही चाहती थी.

यह बात नहीं थी कि ऐसा मैं किसी स्वार्थवश चाहता था. मुझे आभा से कोई गरज नहीं थी. हम दोनों में जब मेलजोल था, तब वह ही अक्सर तरह-तरह की मांग करती रहती थी. मसलन आज अंग्रेजी के नोट्स चाहिएं, तो आज गणित के. इतिहास उसके भेजे में ही नहीं समाता था और संस्कृत की तो वह टांग घसीट कर गलत-सलत पढ़ा करती थी.

मैंने नजर उठाकर आभा को देखा, तो चौंक पड़ा. मेरे डेस्क के आगे प्रवीण खड़ा था. मुझे आश्चर्य हुआ, साथ ही क्रोध भी आया. आश्चर्य इसलिए कि प्रवीण ने खुद मुझसे बोलने में पहल की थी, क्रोध इसलिए कि आभा और मेरे बीच में लड़ाई की जड़ वह स्वयं था. पर मैं शांत रहा. प्रश्नवाचक दृष्टि से उसे देखा, तो वह मुस्करा कर बड़े याराना ढंग से पूछने लगा, "तुम किस तरफ हो, दोस्त? मेरा विचार है, हैड मास्टर साहब के पक्ष में वोट डालना चाहिए."

मैंने तीखी नजर से उसे देखा. मेरा मन भीतर ही भीतर सुलग रहा था, पर मैं बाहर से शांत होने की कोशिश कर रहा था. यह ठीक है कि प्रवीण मुझसे कुछ अधिक होशियार था, परंतु उसे मेरी और आभा की दोस्ती के बीच तो नहीं आना चाहिए था. आज यह आया है तो इसे अच्छी तरह झाड़ देना चाहिए, यह सोचकर मैंने जरा कठोर रुख अपनाने का निश्चय कर डाला.

"तुम प्रदीप को तो जानते हो, दोस्त, कितना शैतान है! ऐसे लड़कों का पक्ष लेना अपना दिवालियापन घोषित करना है," प्रवीण ने कहा.

यह मैं खूब जानता था. मेरी भी यही राय थी. पर चूंकि ये शब्द एक ऐसे व्यक्ति ने कहे थे, जिसके प्रति मैं ईर्ष्या से दहक रहा था और मुझे उसे एक करारा जवाब देना था, इसलिए मैंने उसे लताड़ा, "तुम ही ज्यादा ज्ञानी नहीं हो. दूसरे भी कुछ अकल रखते हैं. मैं किसी को वोट दूं, न दूं, तुम्हें इससे क्या?" यह बात मैंने जरा जोर से कही, ताकि आभा भी सुन ले. मैं अपने इस प्रयास में सफल रहा. पूरी क्लास का ध्यान हमारी तरफ आकर्षित हो गया.

"मैं तो समझता था कि तुम एक होशियार-समझदार और शरीफ लड़के हो!" प्रवीण ने तैश में आकर कहा, "पर आज देखता हूं कि सब उल्टा है. तुम एकदम ईर्ष्यालु, झगड़ालू और अशिष्ट हो. तुम्हें शिष्टतापूर्वक बात करने तक की तमीज नहीं है."

"तमीज!" मैंने यह शब्द सुनकर उसका गिरेबान पकड़ लिया और चीखकर बोला, "लो, अब मुझसे सीखो तुम तमीज!"

एकाएक जैसे कक्षा में हड़कंप मच गया. मैं कुछ अप्रत्याशित करने ही जा रहा था कि आभा अपनी सीट से फुर्ती से उठी और उसने एक ही झटके से मेरे हाथ से प्रवीण का गिरेबान छुड़वा दिया. मैं यह देखकर क्रोध में और पागल हो उठा.

"क्या पागल हो गए हो तुम?" आभा ने मेरी आंखों में झांकते हुए कहा, "तुम इतने गिर जाओगे, मैंने सोचा भी नहीं था".

"अब यह साला प्रवीण उतना ही अच्छा है!" मैंने व्यंग से कहा. पूरी कक्षा हमारे चारों ओर खड़ी तमाशा देख रही थी.

●

दो-चार लड़कों को छोड़कर कोई भी हमारी आंतरिक भावनाओं को नहीं समझ पाया था. किसी के मन में झांककर उसके मैल को देखना इतना आसान है भी नहीं. इसलिए अधिकांश छात्रों के लिए यह एक तमाशा ही था, जबकि आभा, मैं और प्रवीण इसके एक खास पहलू को खूब समझ रहे थे,

मैंने एक पैनी नजर आभा पर डाली. फिर अपना बल तोलने के अंदाज में प्रवीण को देखा. वह मुझ पर कतई भारी नहीं था. मैं मजे से उसकी धुनाई कर सकता था. और इसी इरादे से मैंने हाथ उठाया और आंख मूंदकर पूरी ताकत से दे मारा.

मगर हाय! आंख खोलकर जो दृश्य मैंने देखा, उससे एकदम दहल गया. प्रवीण आंखों में अंगारे भरे मुझे घूर रहा था और आभा की नाक से खून की तेज धार गिर रही थी. यह क्या हुआ! . . .आभा ने बड़ी फुर्ती और दिलेरी से काम लिया था.

क्रोध में अंधा होकर मैं प्रवीण पर हाथ उठा बैठा था. परंतु आभा ने फुर्ती से उसे पीछे धकेल दिया था और मेरा करारा घूंसा उसकी ही नाक पर जा पड़ा था.

इस समय मेरी स्थिति क्या थी, मैं वर्णन नहीं कर सकता. मैं क्या पागलपन कर बैठा था. और यह क्या हो गया! . . .आभा . . . आभा, तुम मुझे क्षमा करो! मैं डर रहा था.

पूरी कक्षा हिंसक-सी मुझे देख रही थी, पर मुझे किसी की परवाह नहीं थी. मैं आभा को देख रहा था. उसकी नाक से बराबर खून बह रहा था. उसने दुपट्टे से उसे पोंछ डाला. और सिसकारी तक नहीं भरी. कैसा आश्चर्य था. ऐसा लगता था नकसीर ही फूट पड़ी है.

एकाएक पीछे से किसी ने मेरा कॉलर पकड़ लिया और पीठ पर जोर से एक घूंसा मारा. फिर तो कई लड़के मुझ पर ताबड़तोड़ घूंसों-लातों और थप्पड़ों की बौछार करने लगे. यह देखकर आभा सब कुछ भूल गई—यह भी कि वह घायल थी.

वह चीख उठी, "छोड़ो उसे, शैतानों, क्या मार डालोगे?" पर उसे किसी ने नहीं सुना.

आखिर, वह फुर्ती से लपकी और सभी को एक तरफ धकेलती हुई मेरे करीब आई और मुझे बाहों के घेरे में लेकर खड़ी हो गई. फिर जोर से चिल्लाई, "अब अगर किसी ने हाथ उठाया तो ठीक नहीं होगा. समझे?"

सब लड़के आभा को अजीब नजर से देखने लगे. मुझे भी घोर आश्चर्य हुआ.

लड़के सीटों पर बैठने लगे. तभी बाहर से मास्टर जी आते दीखे और सब अपनी-अपनी सीटों पर जम गए.

मास्टर जी ने निरीक्षण किया. फर्श पर खून देखकर वह चौंके पड़े.

"खून!" वह आश्चर्य से बोले, "क्या बात है, किस-किस का झगड़ा हुआ?"

कोई बोलता, इससे पहले ही, आभा झटके से उठ खड़ी हुई और बड़ी सधी हुई और संयत आवाज में बोली, "सॉरी, सर, मुझे कभी-कभी नकसीर फूट पड़ती है".

एक क्षण वह रुकी. पूरी कक्षा पर नजर डाली, मुझ पर भी. वह मुस्करा रही थी. पर मेरी आंखों से अविरल अश्रु बह रहे थे. उसने यह देखा और मीठी-सी हंसी हंस दी. मास्टर जी कुछ देर बाद चले गए. आभा ने मेरे पास बैठकर अपना दुपट्टा उठाया और हंसकर बोली, "रोता क्यों है, पगले, तू डरता था कि मैं तेरी शिकायत करूंगी? आभा कभी इतना नीचे नहीं गिरेगी. और उसने उसी दुपट्टे से मेरे आंसू पोंछ दिए, जिससे वह दो मिनिट पहले अपना खून पोंछ रही थी. मेरे चेहरे पर मुस्कान थिरक उठी. ●

लाइन नं. 1 मकान नं. 39, बिरलानगर, ग्वालियर-4

kissekahani.com

अरे भई, किंतु वे हैं कहां? हम उन्हें देखने को तड़प रहे हैं!
यह लीजिए वे आ गए!
हुर्रा!
भई वाह! क्या केक है!
अरे मिठाई और समोसे भी तो लाजवाब हैं!
भई जोनी, तुम ने दिल खुश कर दिया!
थोड़ी देर बाद अंधेरा कर के जोनी ने फिल्म चालू कर दी...
हैलो, मिसेज जोन्स!
हाय! यह तुम्हारे सिर पर केक क्यों रखे हैं?
तो टोपी तुम लोग इस लिए पहन कर आए थे, बेईमान, चोर! तुम ने हमारी इज्जत डुबा दी... ठहरो, बच के कहां जाओ गे!
बचाओ बचाओ!

kissekahani.com

'वर्जित फल' (स्थायी स्तंभ): एक परिचर्चा

घर खुशियों से भर उठा. परिवार में एक नये-नये मेहमान का आगमन हुआ था. ऐसे ही एक दिन उस नए मेहमान का छोटा-सा बड़ा भाई अनिल अपनी माँ से पूछ बैठा; 'मां, मां यह छोटा भैया कहां से आया है?' मां ने संक्षिप्त सा उत्तर दे डाला, 'अस्पताल से.' अनिल फिर बोल उठा, 'पर मां अस्पताल में क्या बच्चे बनाए जाते हैं?' मां झल्ला कर बोली, 'नहीं बेटा, वहां भगवान भेजते हैं.' अनिल का जिज्ञासु मन फिर भी शांत नहीं हुआ, पुन: बोल पड़ा, 'तो चलो मां भगवान से कहकर एक गुड़िया (बहिन) अस्पताल से और ले आयें'. मां शायद ऐसे सुझाव के लिए सहमत नहीं थीं, सो उबल पड़ीं और तड़ातड़ा अनिल के मासूम गाल पर कई चपत जड़ दिए गए. अनिल उलझन में पड़ गया कि आखिर उससे क्या गलती हो गई. और इस तरह एक प्रश्न अनबूझा ही रह गया.

ऐसे कितने ही किशोर तथा किशोरियां हैं, जिन्हें यही नहीं पता कि आखिर बच्चा कहां से आता है और उसकी संरचना कैसे होती है. अगर वे कभी भूल वश इस संबंध में कोई प्रश्न अपने अभिभावक से कर लेते हैं तो बदले में उन्हें प्रताड़ना मिलती है.

किशोर या किशोरियों में विकासक्रम के साथ कई उलझने पैदा हो जाती हैं. किशोर के वीर्यपतन अथवा किशोरी के मासिक धर्म के प्रारंभ का एक प्राकृतिक नियम है. परंतु किशोर या किशोरी इस गुत्थी को सुलझाने के लिए अपने मित्रों या पुस्तकों का सहारा लेते हैं. प्राय: मित्रों को तो पहले ही अधकचरा ज्ञान होता है और पुस्तकों की बात ही छोड़िए. यौन संबंधी ज्ञान के अभाव में कितने ही किशोर अपना भावी जीवन चौपट कर लेते हैं. आखिर इस समस्या का समाधान खोजते-खोजते यही पता लगता है कि यौन-शिक्षा के अभाव के कारण

प्रस्तुतकर्त्ता :

रामाशंकर मिश्र

ही ये दुष्परिणाम निकलते हैं. जब तक यौन-शिक्षा के महत्व को हम नहीं समझेंगे यह रहस्यपूर्ण परदा हमारे किशोर तथा किशोरियों को उलझन और पतन का मार्ग दिखाता रहेगा.

सेक्स की भूख बचपन से ही होती है—यह सत्य है. प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने भी ऐसा ही कहा है. तभी तो ऐसी स्थिति में पश्चिम के कई देश इस शिक्षा को प्रारंभ से ही देने का कार्य-क्रम प्रचलित कर चुके हैं. क्या हमारे देश में ऐसा संभव नहीं है? इस संबंध में प्रस्तुत हैं कुछ छात्र-छात्राओं के विचार:

● 'एक परदा—जो उठना ही चाहिए'

दिनेशकुमार बरनवाल, एम. टेक (अंतिम वर्ष)
इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलॉजी, नई दिल्ली.

यौन शिक्षा को हमारे रूढ़िवादी और धार्मिक संस्कारों में पले लोग अश्लील मानते हैं. यह ठीक नहीं है. छात्र-छात्राओं को यौन शिक्षा का ज्ञान न कराना, उन के साथ अन्याय ही होगा. सही जानकारी मिलने के कारण वे ऐसी जानकारी प्राप्त कर लेते हैं जो उनके जीवन को जर्जर बना देती हैं. यौन शिक्षा के बिना आज के छात्र-छात्राओं का मानसिक और शारीरिक विकास संभव नहीं. यदि समय रहते इस समस्या को सुलझाया नहीं गया तो परिणाम गंभीर निकल सकते हैं.

एक तरफ तो हमारे कर्णधार हमारे छात्र छात्राओं को एक सफल इंजीनियर, डाक्टर वकील अथवा वैज्ञानिक बनाने के लिए चितातुर दिखाई पड़ते हैं, दूसरी ओर एक सफल पति या पत्नी, पिता या माता बनाने के लिए कुछ भी नहीं कर रहे हैं. वर्तमान शिक्षा पद्धति से यौन का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं होता.

भारत में सेक्स को रहस्यमय बना दिया गया है. हमारा युवा वर्ग इस रहस्य के आवरण को हटाने के लिए सस्ती पुस्तकों, ब्लू फिल्मों तथा ऐसे ही निंदनीय साधनों का सहारा लेता है जिस के कारण उन का जीवन और अंधकार-मय हो जाता है और वे इसी में भटकते रहते हैं.

सेक्स की भूख मिटाने के लिए छात्रावासों में

ब्लू फिल्मों का चोरी-छिपे प्रदर्शन होता है. इन फिल्मों को देखकर उत्तेजना बढ़ती है. युवक तथा युवती के संयम का बांध टूट जाता है. इस तरह उनमें मनोविकार जन्म ले लेते हैं.

रूढ़िवादी विचारधारा के लोग प्राय: कहते हैं कि यौनशिक्षा का प्रचलन भारत में अभी संभव नहीं है. परंतु वे यह क्यों भूल जाते हैं कि प्राचीन काल में भी इस तरह की शिक्षा दी जाती थी. सेक्स की भूख का प्रतिबिंब हमें अजंता एलोरा और खजुराहो की प्राचीन प्रतिमाओं में मिलता है. यौन-शिक्षा के लिए भारत के एक मनीषी वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' की रचना क्या इसी उद्देश्य को लेकर नहीं की. पहले विवाह योग्य कन्या को परिवार में रहने के कारण भाभी या विवाहित बड़ी बहिन यौन संबंधी ज्ञान करा देती थी. पर आज परिवार टूट रहे हैं, इसलिए इस की संभावना भी जाती रही.

संक्षेप में मैं यही कहना चाहूंगा कि यौन-शिक्षा का प्रचलन जितनी शीघ्रता से किया जाए उतना ठीक होगा.

वर्तमान किशोर-जगत् की बदलती दुनिया में रूढ़ियां और पुरानी मान्यताएं दम तोड़ रही हैं और नए युग के झरोखों से कहीं कहीं पश्चिमी हवा के झोंके आ रहे हैं. ऐसी स्थिति में पिछले दिनों भारतीय शिक्षाजगत् में यह प्रश्न चर्चा का विषय बना कि विद्यालयों में यौन-शिक्षा दी जानी चाहिए, या नहीं. कुछ दिनों तक यह गरमागरम विषय लोगों की जुबानों का 'बतरस' बना रहा. कहीं-कहीं इसको अनिवार्य विषय बना देने की बात सुनी गई, कहीं एच्छिक. परंतु इस से पूर्व कि कोई निष्कर्ष सामने आता, यह प्रश्न हवा में बिखर गया.

यदि संबंधों की भावना को एक तरफ हटाकर, सापेक्ष दृष्टि से इस प्रश्न के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर ध्यान दिया जाए, तो स्पष्ट होगा कि इस पर विचार करना न केवल किशोर-किशोरियों के मानसिक गठन की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण है, बल्कि 'मनुष्य की दूसरी आवश्यक भूख' के रूप में भी, आज के बदलते भारतीय विश्व की यह प्रमुख समस्या है.

इसी संदर्भ में पढ़िए कुछ छात्र-छात्राओं के तर्कपूर्ण विचार, जिन्हें प्रस्तुत किया है श्री रामाशंकर मिश्र ने.

—सम्पादक

●पिंजड़े से मुक्त भूखे भेड़िए और सेक्स पीड़ित युवक-युवतियां

कुमारी अंजली केसरवानी, बी.ए. (अंतिम वर्ष)
इन्द्रप्रस्थ कालेज, नई दिल्ली

यदि यौन शिक्षा का प्रचलन भारतीय विद्यालयों में नहीं किया गया तो शिक्षा का 'पूर्ण मानव' बनाने का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकेगा.

नदी के प्रवाह को कौन रोक पाया है. हां, उसे कल्याणकारी मोड़ दिया जा सकता है. आज के युवा समाज के प्रवाह को सही दिशा देने की किसी को चिंता नहीं है. इधर हमारे ये तथाकथित दंभी मार्गदर्शक अपने झूठे आदर्शों

को लिए बैठे हैं, उधर धड़ाधड़ मान्यताएं तोड़ी जा रही हैं. सब अपनी मनमानी कर रहे हैं. कोई नियंत्रण नहीं, कोई अनुशासन नहीं. आदर्शवादियों की प्राचीरों में दरारें पड़ चुकी हैं. उस के लिए हम सब दोषी हैं. हमारे शिक्षा शास्त्री यौन शिक्षा को अश्लीलता के दायरे में बांधे बैठे हैं. जबकि ऐसी बात है नहीं, वे सेक्स का संबंध प्रेम-व्यापार से जोड़ देते हैं, जो निहायत संकीर्ण मास्तिष्क की उपज है.

kisseekahani.com

भारतीय विद्यालयों में यौन-शिक्षा

एक प्रश्न

व्यापक अर्थ में सेक्स का बड़ा महत्व है. क्या युवक-युवती को यह अधिकार न दिया जाए कि वह अपने अंग-प्रत्यंग को भली भांति समझे और हो सके तो विपरीत सेक्स को भी जान ले.

मैं नहीं मानती कि यौन शिक्षा से लड़के या लड़कियां अनुचित संबंध बनाने की चेष्टा करेंगे. यह सब तो बिना शिक्षा के अधिक जोरों पर है. यहां मैं एक बात स्पष्ट कर देना चाहती हूं कि यौन-शिक्षा के लिए एक विशेष समय होना चाहिए. जब युवक-युवती परिपक्व अवस्था में हों, तभी उन्हें यह शिक्षा मिलनी चाहिए. तभी वे विवेक और संयम से रहकर इस शिक्षा का लाभ उठा सकते हैं.

सेक्स के बुखार से पीड़ित छात्र-छात्राएं नशीले पदार्थों का सेवन भी करने लगी हैं. भूखे भेड़िये को जब पिंजड़े से खोला जाता है तो जो उस की स्थिति होती है, वही स्थिति आज सेक्स से पीड़ित युवक-युवतियों की है.

धार्मिक शिक्षा पर हमारे छात्र समुदाय को विश्वास नहीं रह गया है. वे इसे मात्र ढकोसला समझते हैं. उन की दृष्टि में यह एक झूठा आडंबर है. अधिकांश धर्म के ठेकेदारों से आज के युवा समाज को वितृष्णा हो गई है. धर्म की नींव श्रद्धा पर टिक सकती है, तर्क की कसौटी पर नहीं. और आज के युवक या युवतियां हर बात को तर्क की कसौटी पर परखना चाहते है. जब तक हमारी धार्मिक मान्यताओं से अंधविश्वास को दूर हटाया नहीं जाएगा, तब तक स्थिति सुधरेगी नहीं. पर मैं यह मानती हूं कि नैतिक और शुद्ध धार्मिक शिक्षा के अभाव में सेक्स समस्या को विकराल रूप मिला है.

अधिक क्या कहूं—'सेक्स-एजूकेशन' आज के उन्मुक्त समाज को आवश्यक है.

●'पहाड़ी नदी के समान यौन-समस्या. . .'

विजय पाण्डेय, बी. ए. (अंतिम वर्ष)
हिन्दू कालिज, दिल्ली विश्वविद्यालय.

'हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में जहां कई दोष हैं, वहां यौन शिक्षा का अभाव भी एक ऐसी कमी है, जिसे जितनी जल्दी दूर किया जाए उतना ही श्रेयस्कर होगा. यौन-समस्या उस पहाड़ी नदी के समान है जो बाढ़ आने पर किनारे के गांवों को भी डुबो देती है. क्यों न नदी पर बांध बना कर नहरें निकाली जाएं और ऐसी बिजली पैदा की जाए, जिस का सदुपयोग हो. मेरा मतलब आप समझ गए होंगे.

सेक्स का ज्ञान नितांत आवश्यक है. उस के अभाव में पति पत्नी को और पत्नी पति को

भली भांति नहीं समझ पाती और कटुता बढ़ जाती है. और यह कटुता कभी-कभी तलाक का रूप ले लेती है, या फिर मन:स्थिति ही खराब हो जाती है. अधिकांश मानसिक चिकित्सालयों में 90 प्रतिशत ऐसे ही मामले आते हैं.

प्राचीन काल में वेश्याएं यौन शिक्षा का ज्ञान करा देती थीं. देवर-भाभी तथा साली-बहनोई का मज़ाक हमारे यहां प्रसिद्ध है. परंतु मज़ाक-मज़ाक में यौन शिक्षा भी मिल जाती थी. परंतु आज वैसी स्थिति नहीं है.

आज मां-बाप के पास न तो इतना समय है कि वे बच्चों को सेक्स का ज्ञान कराएं और न उन की इस में रुचि है. सेक्स का अर्थ केवल सहवास ही नहीं है. सेक्स के अंतर्गत पति अपनी पत्नी से मधुर क्षणों में कैसा व्यवहार करे अथवा पत्नी अपने पति के साथ मनोवैज्ञानिक ढंग से किस प्रकार पेश आए, ताकि उन की जीवन नैया सुखद वातावरण में आगे बढ़े न कि डूब जाए—यह सब ज्ञान यौन-शिक्षा से ही दिया जाना संभव है.

●'आज के तौर-तरीकों से समझौता आवश्यक . . . .'

कुमारी नीरा भार्गव, बी. एड. (अंतिम वर्ष)
लेडी इर्विन कालिज, नई दिल्ली.

'मैं यह नहीं मानती कि बचपन से ही यौन शिक्षा प्रारंभ कर दी जाए. परन्तु 9वीं या 10वीं कक्षा से प्रारंभ करना ठीक रहेगा. वैसे यह सत्य है कि बच्चे बचपन से ही सेक्स संबंधी प्रश्न पूछने लगते हैं. उन के प्रश्नों का हमें सही और समुचित उत्तर देना चाहिए. परंतु मैं देखती हूं कि अधिकांश अभिभावक बच्चों की इस समस्या का समाधान नहीं कर पाते.

हमारे देश में आज प्राय: पुरानी पीढ़ी के लोग कहते सुने जाते हैं कि 'देखो कैसा घोर कलियुग

(शेष पृष्ठ 42 पर)

कहानी

मोम की पुतली

"ऐ अलका . . .!" दीपू ने अपनी बहन को झकझोरते हुए कहा, "उठ, उठ, जल्दी एक कप चाय बना."

अलका सुबह की मीठी-मीठी नींद से चौंककर 'आं . . . आं. . .' करने लगी. दीपू ने गुस्से से कहा—"क्या 'आं . . . आं . . .' कर रही हो, मोम की पुतली? जल्दी उठो और चाय बनाओ."

अलका संभलकर बोली—"हां-हां, भैया, तुम मुंह धो के आओ, तब तक चाय तैयार मिलेगी."

दीपू ने सोचा था कि अलका इतनी सुबह उठने में जरूर आनाकानी करेगी और वह उसे जोर का थप्पड़ लगा देगा, ताकि पढ़ने का अच्छा मूड बन जाए. लेकिन यह निगोड़ी मोम की पुतली तो बड़ी आज्ञाकारिणी निकली! इससे अच्छा यह होता कि रोज की भांति मां को ही जगाता और उनके हाथ की स्वादिष्ट चाय पीकर सुबह की पढ़ाई शुरू करता. सोचता हुआ वह दांत मांजने चल दिया.

चाय तो अलका ने भी बहुत बढ़िया बनाई थी. खाली कप अलका के हाथों में देते वक्त एक बार उसके मन में आया कि कहे—'अलका, चाय तुमने काफी अच्छी बनाई है.' लेकिन उसने कुछ भी नहीं कहा. मुंह पर तारीफ करने से मोम की पुतली और सिर चढ़ेगी. पहले ही काफी सिर चढ़ी हुई है. उसने अलका के हाथों में कप देते हुए कहा—"ले जाओ मोम की पुतली . . ."

अलका को मालूम था कि दीपू उसे चिढ़ाने के लिए ही बार-बार मोम की पुतली कहकर पुकार रहा है. फिर भी उसने हंसते हुए दीपू के हाथों से कप ले लिया और रजाई में दुबकने लगी. वह खड़ा-खड़ा अलका को घूरता रहा. अलका हंसी—"अभी उठकर करूं भी क्या? इसी लिए . . ."

कमबख्त, हमेशा हंसती रहती है. वह तो चाहकर भी हंस नहीं सकता. अंदर ही अंदर बड़ी घुटन-सी महसूस होती है. वह अलका को घूरता हुआ अपने कमरे में चला गया.

पी. यू. सी. की परीक्षाएं शुरू होने में अब सिर्फ पंद्रह दिन बाकी थे. वह खूब मेहनत करके दिन-रात पढ़ रहा था. यह परीक्षा उसके जीवन की सबसे बड़ी परीक्षा थी, क्योंकि इसके नतीजे पर ही उसकी जिंदगी के सपनों का महल खड़ा था.

छुटपन से ही डाक्टर बनने की उसकी बहुत बड़ी ख्वाहिश थी. इसी लिए पी. यू. सी. में भर्ती होते वक्त उसने मां से कहा था कि वह जीव-विज्ञान लेकर पढ़ेगा. लेकिन मां ने उसके उत्साह पर पानी फेरते हुए कहा था—'जीव विज्ञान लेने से पहले अच्छी तरह सोच लो, दीपू. फर्स्ट क्लास मिलेगा, तो ठीक है; गवर्नमेंट मेडिकल कॉलेज में दाखिला मिल जाएगा. लेकिन अगर फर्स्ट क्लास न मिला तो . . .? प्राइवेट मेडिकल कॉलेज में भर्ती कराने के लिए तीन-चार हजार रुपए डोनेशन में देने पड़ते हैं. क्या हमारी उतनी हैसियत है? तुमसे तो घर की आर्थिक परिस्थितियां छिपी नहीं हैं. इससे अच्छा यह है कि तुम कॉमर्स ले के पढ़ो. पढ़ाई भी जल्दी खत्म होती है, और . . .'

मां की बातों से उसका सारा उत्साह ठंडा पड़ गया था. फिर भी वह तुरंत बोल उठा था—'ना, मां, मैं जीव-विज्ञान ही लूंगा और डाक्टर बनूंगा; तुम फिक्र न करो, मैं जरूर फर्स्ट क्लास आऊंगा . . .'

कमरे में बैठे बैठे दीपू ने अपने आप से कहा—'फिक्र न कर, दीपू, तू फस्ट क्लास आएगा, डरता क्यों है? तेरी पढ़ाई भी तो पूरी हो

kissekahani.com

चुकी है . . .'

वह रोज इस तरह अपने को धीरज बंधाता. फिर भी कभी-कभी उसके मन में तरह-तरह की आशंकाएं उठतीं. अगर बदकिस्मती से परीक्षा हॉल में वह सब कुछ भुला बैठा तो . . .? उसने सुना है, कई बार ऐसा होता है कि हमेशा फर्स्ट क्लास आने वाला थर्ड क्लास आता है और थर्ड क्लास आने वाला फर्स्ट क्लास आता है. और इस बात की क्या गारंटी कि परीक्षा में अच्छा लिखने पर फर्स्ट क्लास मिलेगा ही? उसके दोस्त कहते हैं, सब कुछ परीक्षकों की कृपा पर निर्भर है, उनके मूड की बात है. भगवान न करे, कहीं उसके साथ ऐसा हुआ तो . . .? सोच-सोच कर आखिर उसका दिमाग जब थक जाता, दिल कांपने लगता, वह कमरे से बाहर दौड़ आता—इस आशा से कि बाहर ठंडी हवा में घूमने से दिमाग ठंडा हो जाए, दिल की घबराहट दूर हो जाए. तभी उसकी मां वहां आ पहुंचती और उसे टोकती—"जाओ पढ़ो, समय बरबाद न करो, फर्स्ट क्लास न मिला तो कहीं के न रहोगे.'

उसका बेसहारा दिल और डूब जाता. वह तुरंत कमरे में आकर, सिर पकड़कर बैठ जाता. वह नहीं समझ पाता कि आखिर मां रोज-रोज क्यों यही रट लगाए रहती है—'फर्स्ट क्लास नहीं आओगे तो कहीं के न रह जाओगे.' शायद उसे बेटे का डाक्टर बनना पसंद नहीं. इसी लिए एक बार भी उसके मुंह से यह नहीं निकलता—'बेटे, कोई फिक्र न करो, तुम फर्स्ट ही आओगे.' काश, उसने एक बार ऐसा कहा होता . . .! सिर्फ एक बार . . .! उसका कितना धीरज बंधता!

दीपू अंगड़ाई लेता हुआ खड़ा हो गया. ओह, आठ बज भी गए! सुबह से कुछ भी पढ़ाई नहीं हो पाई है. यह सब अलका के हाथों की चाय पीने का परिणाम है. वह रसोई में नाश्ता करने के लिए चला. जाते वक्त उसने सोचा कि नाश्ता करने के बाद वह जमकर पढ़ाई करेगा.

रसोई में उसका नाश्ता प्लेट में रखा हुआ था. शायद मां स्नान करने गई थी. उसका नाश्ता खत्म हुआ तो मां आई और बोली—"ठहरो, दीपू, अभी चाय बनाके दूंगी." वह बैठ गया और मां ने पांच मिनिट में उसे चाय ला दी, फिर बोली—"लगता है, आज सुबह पढ़ने के लिए उठे ही नहीं. ऐसे कैसे चलेगा, दीपू, फर्स्ट क्लास न आया तो. . ."

फिर वही बात! दीपू ने दोनों हाथ कानों पर रख लिए. मां को आखिर हो क्या गया है? चैन से खाने-पीने भी नहीं देती. क्या वह इतना छोटा है कि मामले की गंभीरता को भी न समझे. जब देखो वही बात—'फर्स्ट क्लास न आया तो . . .' सुन-सुनकर कान पक गए हैं. उसे चाय पीने की इच्छा ही न हुई. उठकर सीधे कमरे में आया और पलंग पर लेट गया. मां के ताने सुनने के बाद देर तक पढ़ाई में उसका मन नहीं लग पाता.

पिता जी आज होते तो उसे ये दिन क्यों देखने पड़ते? कहते हैं, उसके पिता जी बहुत अच्छे आदमी थे. चाहे थर्ड क्लास ही क्यों न आता, पिता जी उसे डॉक्टर बनाकर ही छोड़ते. वह कितना अभागा है कि बचपन में ही पिता जी को खो बैठा. जब उन की मृत्यु हुई थी, वह सिर्फ छह साल का था और अलका पांच साल की. उनकी धुंधली-सी याद उसके मन के किसी कोने में आज भी विद्यमान है.

लेकिन, उनकी एक बात वह बिलकुल समझ न पाता. उन्होंने बेटे

जयलक्ष्मी राजगोपाल

की पढ़ाई के लिए बैंक में रुपए क्यों नहीं जमा किए? सुना है, उनकी आमदनी काफी अच्छी थी. फिर बचत की बात उनके दिमाग में क्यों न आई. आखिर सभी जानते हैं कि आदमी अमर नहीं है. उसके पैदा होते ही उसके नाम पर यदि उन्होंने हर महीने सौ-सौ रुपए जमा किए होते तो छह साल में छह-सात हजार रुपए इकट्ठे हो जाते और उसे आज

इस जानलेवा सिरदर्द से छुटकारा मिलता.

संपन्नता दुर्बल से दुर्बल को भी सबल बना देती है. वह वैसे भी पढ़ने में काफी तेज है, अगर संपन्न और हो गया होता तो सोने में सुहागा हो जाता. और हो सकता है, वह 'मेरिट' में ही आता. काश, पिता जी ने उसके नाम पर रुपए जमा किए होते . . .!

उसे आज इस बात का भी दुःख हो रहा है कि वह क्यों ब्राह्मण होकर पैदा हो गया. इसके बदले किसी निम्न जाति में पैदा हुआ होता तो अच्छा होता. क्योंकि आजकल स्कूल में, कॉलेज में, कहीं भी निम्न जाति वालों को जल्दी दाखिला मिलता है. उसने सुना है, गवर्नमेंट मेडिकल कॉलेज में सेकेंड क्लास में पास होने वाले लड़कों तक को आसानी से दाखिला मिल जाता है, क्योंकि उनके लिए अलग 'रिज़र्व्ड सीट्स" होती हैं, जबकि उसके जैसे ऊंचे जाति वालों को फर्स्ट क्लास आने पर भी आसानी से दाखिला नहीं मिल पाता है. सचमुच कितनी अजीब बात है यह!

वह पलंग पर से उठ गया और जीव-विज्ञान की किताब लेकर बैठा. सुबह से एक पेज भी नहीं पढ़ा गया था. सुबह उठते वक्त सोचा था कि दुपहर के बारह बजने से पहले ही वह किताब पूरी कर लेगा. इस बीच उसने कई बार गंभीर होकर पढ़ने की कोशिश की थी, लेकिन सफल न हुआ था. मन इधर-उधर भटकता रहा था. वह किताब मेज पर फेंककर उठ खड़ा हुआ. तभी अलका उसके कमरे तक आई और अंदर झांककर हंसती हुई वापस लौट पड़ी.

लगता है, रानी जी आज फिर सिनेमा देखने निकली हैं. उसने मुंह बिचकाया. हां-हां, इसके सिवा उसे दूसरा काम ही क्या है? न कोई पढ़ाई-लिखाई, न कोई और माथापच्ची. काश, वह भी लड़की होता!

छि:-छि:, उसे आज यह क्या हो गया, जो इस तरह बेसिर-पैर की बातें सोच रहा है. उसने सिर को जोर से झटका दिया और मेज से किताब उठाई.

तभी उसके कानों में आवाज आई—"मैं शाम तक पहुंचूंगी, मां. आने में अगर देर भी हुई, तो घबराना नहीं, मैं रेखा की कार में आऊंगी."

तो उसका अंदाजा गलत न रहा. मोम की पुतली सिनेमा ही जा रही है.

"अच्छा, बेटी, तुम बस में ही जाओगी न? बस के पैसे बचाने के इरादे से धूप में पैदल तो न जाओगी?" यह मां की प्यार भरी आवाज थी.

एकाएक उसका पारा चढ़ गया. वह कमरे में से ही चिल्लाया—"हां-हां, धूप में न जाओ, कहीं मोम की पुतली पिघल न जाए, कहो तो बस स्टॉप तक छाता ले जाऊं?"

उसके व्यंग्य का जवाब अलका ने हमेशा की तरह हंसते हुए ही दिया—"ना, भैया, कोई जरूरत नहीं, तुम अपनी पढ़ाई देखो. . ."

वह और भी कुढ़ गया. बुद्धू कहीं की! पागल जैसी हंसती रहती है; गुस्सा, व्यंग्य, मजाक या प्यार का अंतर ही नहीं समझती? हां, दिमाग में अक्ल नाम की चीज भी हो, तब न! अगर वह परीक्षा में फेल भी हो जाए, तब भी इसी तरह हंसा करेगी.

वह कुढ़ता हुआ कमरे से बाहर आया. हॉल की बड़ी घड़ी ने बारह बजाए. ओह, आधा दिन व्यर्थ ही बीत गया. चलो, कोई बात नहीं, खाना खाने के बाद सुबह की कसर निकालेगा.

अपनी पसंद की सब्जी देखकर उसका गुस्सा गायब हो गया, वह शांत-चित्त होकर खाना खाने लगा. मां उसे खाना परोसकर इधर-उधर का काम करने में जुट गई. उसे मां की तरफ देखने का साहस न हुआ, क्योंकि उसे डर था, कहीं वह फिर 'फर्स्ट क्लास' की बात न कह बैठे.

वह सिर झुकाकर खाने लगा. सब्जी की कटोरी खाली हो गई थी. उसने सिर उठाकर मां की तरफ देखा और मां ने उसे सब्जी परोसी. उसने सोचा, अब मां जरूर फर्स्ट क्लास की बात उठाएगी. लेकिन मां कुछ बोले बिना ही चली गई. उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा. अब वह रह-रहकर मां को ही देखने लगा और उसने देखा कि वह भी ध्यान से उसी को देख रही है. दीपू को सचमुच मां की चुप्पी तानों से भी ज्यादा अखर रही थी. उसे बड़ा अजीब-सा लगने लगा. खाना खाने के बाद भी वह थोड़ी देर वैसे ही बैठा रहा. आखिर उसे अपने ऊपर बुरी तरह खीझ आने लगी. वह समझ न पाया कि आज मां इस कदर चुप क्यों है? वह बेचैन होकर उसे घूरकर देखने लगा. अरे, उसकी आंखें क्यों भीगी-भीगी लग रही हैं! वह खाने पर से उठा तो पेट के साथ मन भी भारी हो उठा था. कमरे में आकर वह धम्म से पलंग पर लुढ़क गया. आंखें बंद करके काफी देर तक वह पड़ा रहा. लेकिन आज नींद भी उससे रूठ गई थी.

इससे अच्छा तो यह होता कि वह भी अलका के साथ 'मैटिनी' देख आता. लेकिन मां से पूछने की हिम्मत ही कहां है उसमें? यों मां अलका को हफ्ते में एक बार सिनेमा जरूर भेज देती. कहती, दिन भर घर में रहती है बेचारी, मनोरंजन के लिए एकाध पिक्चर देखना जरूरी है. लेकिन आज तक उसके मुंह से यह नहीं निकला—"दीपू बेटे, तुम भी सिनेमा देख आओ." शायद सोचती है कि कॉलिज जाने वालों को ऐसे मनोरंजन की जरूरत नहीं होती. अब मां को कौन समझाए कि पढ़ाई करने वालों को ही समय-समय पर ऐसे मनोरंजन की ज्यादा जरूरत होती है. क्या मां नहीं जानती कि आदमी का दिमाग कोई मशीन तो नहीं कि लगातार एक समान काम करता रहे. बीच-बीच में एकाध बार सिनेमा देखा, तो दिमाग बहुत तरोताजा हो जाता है और उसके काम करने की ताकत भी दुगुनी हो जाती है.

वह बिस्तर पर करवटें बदलने लगा. ओह, दो बज गए. पिक्चर शुरू हो चुकी होगी—वह जरूर फिल्म 'महफिल' देखने गई होगी, क्योंकि आज उसका पहला शो है. एक हफ्ते पहले ही उसके दोस्त नरेश और सुरेश ने उससे कहा था कि वे दोनों 'महफिल' को पहलो शो देखने के लिए जाने वाले हैं. उन्होंने उसका मजाक उड़ाते हुए कहा था—'थोड़ी हिम्मत करके आओ न दीपू, तुम अब दूध पीते बच्चे नहीं रहे कि मां की हर बात मानते जाओ . . ."

दीपू ने कहा था—"ना बाबा . . ." वह अभी पिछले महीने का अनुभव भूला न था.

पिछले महीने फिल्म 'मेरा सपना' आई तो सुरेश और नरेश ने उसको भी बुलाया. वैसे वे दोनों हर नई पिक्चर देखकर ही छोड़ते हैं, लेकिन दीपू उनके साथ बहुत कम जा पाता था. उस दिन जब उन्होंने उसे बुलाया तो वह तैयार हो गया. उस रोज आधे दिन की छुट्टी थी, सोचा, मां को पता न लगेगा.

पिक्चर वैसे बुरी न थी, फिर भी उसको घर लौटते वक्त सिर-दर्द शुरू हो गया. घर लौटते वक्त वह दो एनासिन ले आया, खाकर चुपचाप पड़ा रहा. मां से या अलका से सिर-दर्द की शिकायत न की, क्योंकि सिर-दर्द की बात बताई होती तो उनको पता लग जाता कि वह मैटिनी शो देखकर आया है.

फिर दूसरे दिन गुल खिल कर ही रहा. हुआ यह कि उसकी कमीज में एक टिकट का कूपन गलती से रह गया और कपड़े धोते वक्त मां को मिल गया. फिर तो मां ने वह शोर मचाया, वह शोर मचाया कि बस! यह बात तो ठीक है कि सिनेमा देखने से हमेशा उसे सिर-दर्द होने लगता है और एक-दो दिन तक उसकी पढ़ाई में रुकावट आ जाती है, लेकिन दूसरे दिन उसका दिमाग इतना तरोताजा हो जाता है कि 'डबलस्पीड' से पढ़ाई होने लगती है. इस तरह सिनेमा देखने से नुकसान से ज्यादा लाभ ही होता. लेकिन मां को समझाने की, उसकी तो हिम्मत है नहीं . . . वह देर तक इधर-उधर करवट बदलता रहा. उसे पता भी न चला कि कब उसकी आंख लग गई.

●

सोकर उठा तो उसके सिर में दर्द था. अरे, यह कैसा कमाल है! सिनेमा गई मोम की पुतली और सिर-दर्द उसे हो गया!

तभी अलका की आवाज उसके कानों में आई. अच्छा, तो यह सिनेमा से घर भी लौट चुकी! हां, रेखा की कार में आई है न? वह उठकर खड़ा हो गया, और अंगड़ाई ली. तभी अलका की आवाज आई.

"मां, एक बात कहूं, गुस्सा तो न करोगी?"

"कहो बेटी . . ." यह मां की प्यार भरी आवाज थी.

"मुझे नौकरी मिल गई है, मां, ढाई सौ महीना मिलेगा. 'टाइपिस्ट' की नौकरी . . ."

"अलका . . ." मां की आवाज में एकाएक तेजी आ गई, "अचानक यह क्या सूझी?"

मुखपृष्ठ परिचय

'श्री अरविंद इंटरनेशनल, पांडेचरी' की दसवीं कक्षा की छात्रा, सोलह वर्षीय कु. आशा अक्सर ही विद्यालय के कार्यक्रमों में प्रथम आती रही हैं और इस प्रकार इन्होंने अनेक पुरस्कार प्राप्त किए हैं.

कु. आशा को गाने व कढ़ाई का विशेष शौक है. खेलों में जूडो तथा व्यायाम आदि के अतिरिक्त बास्केट बॉल, फुटबाल व तैरना भी इनकी रुचियों में है. यह अपनी गायन-कला में विशेष रूप से निखार लाना चाहती हैं, ताकि एक दिन विशिष्ट गायिकाओं में अपना स्थान बना सकें. 'पराग' की शुभकामना है, इनकी महत्त्वाकांक्षा पूरी हो.

अलका हंसी—"जरा शांत-चित्त होकर सुनो, मां. पहली बात तो यह कि अब लड़कियों के नौकरी करने में कुछ भी बुरा नहीं रह गया है. दूसरी बात यह कि जब डिग्री-प्राप्त लोगों को भी पूछने वाला कोई नहीं है तो मुझे रेखा के पिता जी की कृपा से नौकरी मिली."

अच्छा, तो रानी जी अब नौकरी भी करने लगीं! हफ्ते में तीन सिनेमा देखेंगी. साड़ियों से पूरी अलमारी भर देंगी. क्या मजाल कि कोई उसके मामले में दखल दे. यह नौकरी क्या मिल गई, उसके पर ही लग गए समझो.

"और, मां, मैंने इस बात की जानकारी भी कर ली है कि कौन-से बैंक में 'लोन' मिलता है."

मां की आवाज में अब साफ झुंझलाहट थी—"आज यह क्या बेसिर पैर की बातें कर रही है?"

अलका फिर हंसी—"तुम जानती हो, मां, भैया को डॉक्टर बनने की कितनी बड़ी ख्वाहिश है. भगवान न करे, अगर उन्हें फर्स्ट क्लास न मिला? तुम कहती हो कि प्राइवेट कॉलिज में भर्ती कराने की हमारी हैसियत नहीं. इसलिए मैंने सोचा है कि बैंक से तीन-चार हजार या जितने भी उन्हें 'डोनेशन' देने पड़ेंगे, लोन के रूप में ले लेंगे और हर महीने मैं अपने वेतन से थोड़े-थोड़े रुपए चुकाती जाऊंगी!"

दीपू को लगा, सारी पृथ्वी घूम रही है, जोर जोर से घूम रही है. ऐसी बहन को वह मोम की पुतली कहता था! वह सिर पकड़कर पलंग पर धम्म् से गिर गया. इसी अलका को वह बुद्धू समझता था!

"लेकिन, बेटी . . ." मां की आवाज लड़खड़ा रही थी.

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं, मां, मुझ से भैया की हालत देखी नहीं जाती. अब मैं नौकरी करूंगी, जरूर करूंगी . . . सच-सच बताओ, मां, क्या तुम भैया को डॉक्टर देखना नहीं चाहतीं?"

दीपू सांस रोककर खड़ा हो गया.

"कौन मां नहीं चाहती, बेटी? लेकिन . . ." मां की बात पूरी हो नहीं पाई कि उनका गला रुंध गया. वह स्तब्ध खड़ा सुन रहा था.

तो . . . तो . . . क्या मां के दिल में भी उसे डॉक्टर बनाने की इच्छा है . . .! वह बुत बना-सा मालूम नहीं कितनी देर वैसे ही खड़ा रहा. फिर एकाएक उसने हवा में मुट्ठी तानी और बड़बड़ा उठा—'सुनो, मां . . . सुनो, अलका . . . मैं आजतक जो सहारा ढूंढ़ रहा था. वह मुझे मिल गया. अब मुझे और किसी चीज की जरूरत नहीं. अलका के लोन की भी नहीं. आत्मविश्वास के द्वारा आदमी क्या नहीं कर सकता? मैं फर्स्ट आऊंगा, जरूर आऊंगा . . .' ●

सी 192, आई. डी. पी. एल. क्वार्टर्स, बालानगर टाउनशिप पो. आ. हैदराबाद-37.

—आपने लालच इनाम का तो खूब दिया है. चूंकि यह इनाम मुफ्त का नहीं है, इसलिए मुझे नहीं चाहिए. क्योंकि 50 पैसे का 'पराग' खरीदो और 10 पैसे का पोस्टकार्ड और एक घंटे की 'दिमागी एनर्जी' खर्च करो, जिसकी कीमत . . .

—मोहनलाल अग्रवाल, ग्वालियर.

आपने काफी लागत लगाई है, इसलिए, मुफ्त का यह इनाम आपके लिए घाटे का सौदा रहेगा!

—दोस्त, मेहरबान, कदरदान, आलीशान, एक इलाची दो बादाम! एक आपका घोड़ा, उसके दो लगाम! नीचे जमीन ऊपर आसमान! तुम बादशाह हम गुलाम! दोस्ताना, पोस्ताना, दोस्ती में शक नहीं! इतनी मुद्दत खत न आया, क्या हमारा हक नहीं!

—आर्दशकुमार नागपाल, श्रीगंगानगर.

भाईजान, जान कुर्बान! मगर फिलबदी मिसरा-तरह पेश करने का यह कोई मौसम है!

बाकी फिर, पहले अपना हाजमा ठीक कीजिए!

—पराग लाने जा रही थी, मुझे ईंट से ठोकर लगी और दवा खानी पड़ी, इसके लिए आप 'मुफ्त का इनाम' दे सकते हैं?

—माल्ती डे, मुंगेर.

मुफ्त का इनाम

नं. 1 का परिणाम

मुफ्त की दवा किसे लगी है, जो आपको लगे!

—देखिए, आपको मेरी तीन शर्तें माननी होंगी, यदि आपने न मानी तो जानते हैं मैं क्या करूंगा? अपने दोनों पहलवान मामाओं की मदद से आपका मुख खुलवा कर उसका नाम लूंगा और फिर नाप के लड्डू आपको खिलाऊंगा—चाहे उसमें 'लॉफिंग गैस' (हंसाने वाली गैस) ही भरी हो.

—अनवारअहमद अंसारी, वाराणसी.

ही! ही! ही! ही! मुफ्त में इनाम नहीं मिलेगा.

पुरस्कृत :

हमारे पड़ोस में एक रईस पहलवान रहते हैं उन्होंने हर काम के लिए नौकर रख छोड़े हैं. यहां तक कि वे स्वयं तो ठांस कर खाते हैं और नौकरों से कसरत करवाते हैं : उनका नहाना-धोना भी नौकर करते हैं. . . .

—करनजीतसिंह सरन, छिंदवाड़ा.

तो 'मुफ्त का इनाम' आप किस नौकर को दिलवा रहे हैं?

—माई डियर भाइयों और भौजाइयों! 'टेरेलीन' के सूटों और 'डकोलोन' की टाइयों! कनाट प्लेस के धोबियों और चांदनी चौक के नाइयों! चार मिनार की सिगरेटों और जहाज मार्का दियासलाइयों! लालकिले के पत्थरों और जामामस्जिद के खंभाओं! 'कॉटन' की लुंगियों और खद्दर के पाजामाओं! बड़ी प्यास लगी है कोकाकोला पिलाओ! मुझे पढ़ने दो पराग और न सताओ.—**अमीरचंद तालवाड़, अमृतसर**

अजी जाओ, जाओ, जाओ!

—'मुफ्त का इनाम' की इस पोस्टकार्डी घोषणा से क्या आप यह नहीं जानना चाहते कि कहीं कोई आपसे ज्यादा तो बेवकूफ नहीं है? पता पीछे है . . .

—राकेशकमल जौहरी, सहानरपुर

—मिल गया!

'मुफ्त का इनाम' के बाबत पढ़ते ही दिल धड़का, क्योंकि मुफ्त की चीजें हजम नहीं होती, इसलिए . . .

—विनोदकुमार चतुर्वेदी, सोधी.

हो! हो! हो! हो! मुफ्त में इनाम नहीं मिलेगा.

मुफ्त का इनाम

एक पोस्टकार्ड पर कुछ भी लिखिए—वाही-तबाही बकिए, खुशामद कीजिए, धमकाइए, मजाक उड़ाइए, कसमें खाइए, सवाल कीजिए, चकराइए, भरमाइए, व्यंग्यपूर्ण आलोचना कीजिए—लेकिन, हो सब शालीनता की सीमा के अंदर-अंदर! उद्देश्य है विशुद्ध मनोरंजन! प्रकाशित कार्डों में से एक चुने हुए श्रेष्ठ कार्ड पर पंद्रह रुपए की पुस्तकें प्रति मास पुरस्कार में दी जाएंगी. देखें आपकी बुद्धि कितनी कुलांचें भरती है. यदि आपको विश्वास है कि यह इनाम आपको मुफ्त में ही मिल जाएगा, तो अपना कार्ड 20 दिसंबर तक इस पते पर भेजना हरगिज न भूलिए : संपादक 'पराग', (मुफ्त का इनाम-4), 10 दरियागंज, दिल्ली-6.

INDIA PORTUGUESA
2 TANGAS
INDIA
ESTADO DA INDIA
ULTRAMAR PORTUGUÊS
ESTADO DA INDIA
CORREIO
ESTADO DA INDIA
CORREIOS
ESTADO DA INDIA
REPÚBLICA PORTUGUESA
ESTADO DA INDIA
REPÚBLICA PORTUGUESA
ESTADO DA INDIA
REPÚBLICA PORTUGUESA

kissekahani.com

गोआ की टिकट शताब्दी के अवसर पर –

गोआ के डाक-टिकट

सर्वोदय ग्राम पुस्तकालय
पु.सं. .....
बिजनौर

– गजराज जैन

भारत में आने वाले सबसे पहले यूरोपवासी पुर्त्तगाली थे जिन्होंने 460 वर्ष पूर्व गोआ पर अधिकार किया था. आज से ठीक 10 वर्ष पूर्व सन् 1961 की 19 दिसम्बर को भारतीय सेनाओं ने गोआ को पुर्त्तगाली शासन से मुक्त कराया.

अपने शासनकाल में पुर्त्तगाल ने अपनी भारतीय बस्तियों—गोआ, दमण एवं दीव में अपने डाक टिकट प्रचलित किए. इस प्रकार के टिकटों का सर्व प्रथम प्रचलन एक शताब्दी पूर्व सन् 1871 में हुआ. तब से गोआ के मुक्त होने तक कुल 505 विभिन्न टिकट वहां जारी किए गए.

●

प्रारंभ से सन् 1924 तक जो डाक टिकट वहां जारी किए गए उनमें से अधिकांश पुर्त्तगाल तथा अन्य पुर्त्तगाली बस्तियों में प्रकाशित टिकटों जैसे ही थे, जिनपर विशेषरूप से 'इंडिया' अंकित किया गया था. इनका मूल्य रियल, टंगा, और रुपये में होता था जो क्रमशः भारतीय पाई, आने और रुपए के समान थे. साथ वाले चित्र में प्रदर्शित टिकटों का परिचय इस प्रकार है :—

पुराने टिकटों में 1898 में निकाले गए सम्राट कार्लोस के टिकट प्रसिद्ध हैं. उस सेट का 2 टंगा मूल्य का टिकट यहां प्रस्तुत है (चित्र सं. 2). इस के पश्चात् फसलों की यूनानीदेवी 'सीरिस' के सम्मान में 1914 में तीस टिकट निकाले गए (चित्र सं. 3).

संत फ्रांसिस जेवियर का गोआवासियों के जीवन पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव होने से उनकी स्मृति में समय समय पर कई टिकट जारी किए गए. इस पुर्त्तगाली धर्म प्रचारक ने सन् 1542 से 1552 तक अपने गोआ प्रवास काल में मलाया, लंका, जावा, जापान आदि देशों में इसाई धर्म का प्रचार किया और लगभग 12 लाख लोगों को अपने धर्म में दीक्षित किया. सन् 1931 में संत जेवियर के अवशेषों की प्रदर्शनी के अवसर पर गोआ में 6 टिकटों का एक सेट जारी किया गया, जिन पर इस महान् संत के स्मारक, उसके चित्र (चित्र सं. 6), कब्र, गिरजाघर, हस्ताक्षर आदि को अंकित किया गया था.

●

सन् 1933 में जारी किए गए टिकटों पर 'पुर्त्तगाल' नामक जहाज व 'सेन गेब्रियल' के चित्र अंकित हैं. (चित्र सं. 4). इसके पश्चात् सन् 1938 में 23 टिकटों की टिकट-माला जारी की गई, जिनपर हेनरिक, वास्कोडि-गामा एवं अलबुकर्क के चित्र अंकित थे. (चित्र सं. 7, 8, 9).

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् सन् 1946 में गोआ से संबंधित महापुरुषों के चित्रों वाली एक नई टिकट-माला निकाली गई. टिकट सं. 11 से 15 इस माला के हैं, जिन पर क्रमशः संत फ्रांसिस जेवियर, लुई डी कैमो, वास्को-डि गामा, गर्तिया और अल्बुकर्क के चित्र अंकित हैं.

प्रसिद्ध धर्म प्रचारक पादरी जोस वाज की तीसरी जन्म शताब्दी के अवसर पर सन् 1951 में 9 विशेष टिकट निकाले गए, जिन पर स्वयं पादरी और सेनकोल चर्च के भग्नावशेष हैं (चित्र सं. 1). सन् 1952 में संत फ्रांसिस के निधन की चौथी शताब्दी के अवसर पर निकाले गए टिकट पर उन कीमूर्ति का चित्र अंकित है. (चित्र सं. 16) सन् 1953 में पुर्त्तगाल ने अपने डाक टिकटों की शताब्दी मनाई. इस अवसर पर जो विशेष टिकट (चित्र सं. 10) निकाला गया उस पर पुर्त्तगाल द्वारा जारी किया गया प्रथम टिकट अंकित है जो कि महारानी मेरिया के चित्र से युक्त है. इस टिकट पर इसके अलावा भारत, मकाउ, टियूर, अंगोला, मोजम्बिक गिनी आदि 8 पुर्त्तगाली बस्तियों के राज्य चित्र भी अंकित हैं. 1954 में गामा पिंटो की जन्म-शताब्दी पर जारी किए गए टिकटों पर डा. पिंटो के चित्र अंकित हैं. (चित्र सं. 5). इसी प्रकार धर्म प्रचारक डालगेड़ो की जन्म शताब्दी के अवसर पर 1955 में एक विशेष टिकट निकाला गया. (चित्र सं. 17).

भारत में पुर्तगाली बस्तियों की स्थापना के 450 वर्ष पूरे होने पर सन् 1956 में प्रसिद्ध व्यक्तियों, भारत में पुर्तगाली वाइसरायों एवं पुर्तगाली बस्तियों के चित्रों से युक्त 18 टिकटों की विशेष माला जारी की गई. इस माला के 3 टिकट यहाँ प्रदर्शित हैं (चित्र सं. 18, 19 व 20) जिन पर क्रमशः मेनुअल एटोनियो डिसूजा, वायस राय एलमिड़ा एवं वास्को डिगामा के चित्र अंकित हैं.

सन् 1957 में 6 नये टिकटों का सेट जारी किया गया जिन पर विभिन्न रंगों में दादरा और नगर हवेली जिलों का नक्शा अंकित है. (चित्र सं. 21). सन् 1958 में पुनः 8 नये टिकट निकाले गए जिन पर प्रसिद्ध पुर्तगाली व्यक्तियों के राज्य चिन्ह अंकित थे. टिकट सं. 22 व 24 में अलबर्गेरिया तथा अलबुकर्क के शाही चिह्न मुद्रित हैं.

●

गोआ के टिकटों का अंतिम सेट 1959 में जारी किया गया. इस सेट में कुल 20 टिकट थे और प्रत्येक पर किसी पुराने या नये पुर्तगाली सिक्के के दोनों ओर के चित्र अंकित हैं. चित्र सं. 24 का टिकट इसी सेट का है और इस पर फिलिप I के शासनकाल में प्रचलित चाँदी के सिक्के का चित्र अंकित है.

जनहित के कार्यों के लिए, चंदा एकत्र करने को वर्ष में कुछ समय के लिए ऐसे टिकट चलाए जाते थे, जिन्हें सामान्य टिकटों के अतिरिक्त चिपकाया जाना आवश्यक था. चित्र सं. 25 में इस प्रकार के टिकट का उदाहरण है जिस पर माता और पुत्र का चित्र अंकित है.

गोआ-मुक्ति के समय 1962 में जारी किए जाने हेतु खेलों का सेट व मलेरियानिवारण टिकट तैयार था. किंतु बीच में ही पुर्तगाली शासन का अंत हो जाने के कारण वे टिकट बिक्री के लिए जारी नहीं किए जा सके. ●

राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा (राज.)

बिस्कुट !
बिस्कुट !
बिस्कुट !

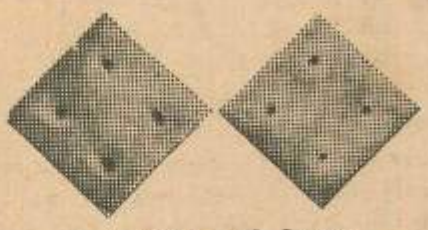

खस्ता और करारे बिस्कुट

स्वादिष्ट व शक्तिदायक बिस्कुट

चाय के साथ खाइये

काफ़ी के साथ आनन्द उठाइये

पार्टी में खिलाइये

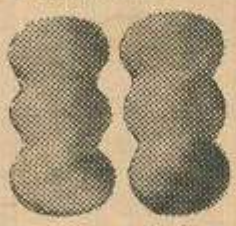

खस्ता और करारे बिस्कुट

वही मज़ा, वही स्वाद ! यह बिस्कुट मेरे लिये, आपके लिये, सबके लिये हैं.

बढ़िया बिस्कुट — बिना शक डालिमा बिस्कुट.

— डालिमा हर प्रकार के बिस्कुट बनाते हैं :

डालिमा

ग्लूकोज़, पाइन एप्पल क्रीम, बटर क्रीम, ऑरेन्ज क्रीम, क्रीम वैफ़र्स, टोको, कैरावे, साल्ट, अरारूट, टी बिस्कुट, कोकोनट कुकीज़ इत्यादि.

डालिमा बिस्कुट प्राइवेट लिमिटेड, राजपुरा, पंजाब
(भूतपूर्व पटियाला बिस्कुट मैन्यूफ़ैक्चरर्ज़ प्रा० लि०)

mcm/db/11 hin

●आदित्य

सनसनीखेज खेल-प्रदर्शन

तिरंगे ने लाज रखी— स्वर्णपदक दिलवाया !

15 अगस्त का दिन पर वह हम भारतीयों के लिए 'स्वतंत्रता-दिवस' नहीं था, क्योंकि तब तक—1936 में—हमारा देश स्वतंत्र नहीं हुआ था.

फिर भी, इस ऐतिहासिक दिन, तिरंगे झण्डे ने (जो उस समय सिर्फ कांग्रेस का ही झण्डा था, चर्खे के निशान के साथ) हमारे देश की आन-शान को कायम रखने में अपना योगदान दिया.

अगर उस दिन तिरंगा अपनी अभूतपूर्व भूमिका न निभाता, तो भारत निश्चय ही पिछले दो ओलिम्पिक खेलों में अर्जित अपनी हॉकी-प्रतिष्ठा को गंवा देता, और हॉकी प्रेमियों को यह कहने का मौका न मिलता कि "हॉकी में जो सार-तत्व है, वह भारत के पास है, और भारतीय हॉकी में भी जो सार-तत्त्व है, वह ध्यानचंद के पास है." ध्यानचंद, अर्थात् 'हॉकी के जादूगर', हॉकी के 'न भूतो, न भविष्यति खिलाड़ी!'

15 अगस्त, 1936 के दिन यही ध्यानचन्द—भारतीय ओलिम्पिक हॉकी दल के कप्तान—बर्लिन (जर्मनी) में चिंतामग्न मुद्रा में बैठे थे. इतनी गहरी चिन्ता पिछले 15-16 साल के हॉकी जीवन में उन्हें कभी नहीं हुई.

हॉकी के खेल में भारत ने पिछले 40-50 वर्षों में जैसा नाम कमाया है और खेलों के इतिहास में जैसा अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है, वह कोई देश किसी भी खेल में आज तक प्रस्तुत नहीं कर पाया है. इन वर्षों में, भारत हॉकी खेलने वाले देशों में सबसे ऊंचा रहा है.

हॉकी का खेल भारत ने अपने भूतपूर्व स्वामी इंग्लैण्ड से सीखा था. पर, 'गुरु गुड़ रह गये, चेले शक्कर हो गये' वाली कहावत सच हो गयी. आज तक इंग्लैण्ड हॉकी के किसी भी बड़े मैच में भारत को नहीं हरा पाया है. दुनिया को हॉकी खेलना भारत ने ही सिखाया, और इस कलात्मक हॉकी के सब से बड़े प्रदर्शक थे—ध्यानचन्द, जिन्होंने सेना के एक साधारण सैनिक के रूप में अपने जीवन की शुरुआत की थी.

1924 में झेलम में पंजाब इंडियन इन्फैन्ट्री हॉकी-प्रतियोगिता का फाइनल मैच हो रहा था. ध्यानचन्द का दल दो गोल से पीछे था. मैच समाप्त होने में सिर्फ चार मिनट बाकी थे. इस लिए जीतने की आशा करना व्यर्थ ही था. तभी, ध्यान को अपने कमांडिंग अफसर की आवाज सुनाई दी, "चलो, ध्यान ! कुछ करो. हारना है, क्या ?" इन शब्दों ने ध्यान पर जादू का-सा असर किया, और उन्होंने अकेले चार मिनटों में विरोधी-पक्ष पर तीन गोल करके अपने दल को जिता दिया. इस प्रदर्शन को देखा कर दर्शक उन्हें 'हॉकी का जादूगर' कहने लगे.

1936 में भारत के सैनिक खिलाड़ियों ने, जिनमें ध्यानचंद भी शामिल थे, न्यूजीलैण्ड का दौरा कर, वहाँ के हॉकी दलों को 21 में से 18 मैचों में बुरी तरह हराया. इनमें सबसे अधिक गोल सेंटर फारवर्ड ध्यानचंद ने ही किये.

1928 में भारतीय हॉकी फेडरेशन की कोशिशों से ओलिम्पिक खेलों में हॉकी को फिर स्थान मिला. न्यूजीलैण्ड के दौरे की सफलता से भारत के हॉकी-प्रेमियों को आशा होने लगी.

पर, भारत के हॉकी-खिलाड़ियों में (जिनमें ध्यानचंद के अलावा वर्तमान पटौदी के नवाब के पिता, और पाकिस्तान हॉकी संघ के अध्यक्ष दारा भी शामिल थे) अपने प्रथम ओलिम्पिक प्रयास में जो कुछ कर दिखाया, वह भारत के हॉकी प्रेमियों का ही नहीं, सारे विश्व का आश्चर्य बन गया. एम्सटडम में हुई इस ओलिम्पिक हॉकी प्रतियोगिता में भारत ने आस्ट्रिया, बेल्जियम डेन्मार्क, स्विट्जरलैण्ड और हालैण्ड को क्रमशः 6, 9, 5, 6 और 3 गोलों से हराया.

1932 में लॉस एंजिल्स में हुई ओलिम्पिक हॉकी प्रतियोगिता में भारत ने दूसरी बार हॉकी का स्वर्ण पदक जीता.

1936 में बर्लिन में होने वाली ओलिम्पिक हॉकी प्रतियोगिता में भाग लेने वाले भारतीय दल के कप्तान नियुक्त हुए—ध्यानचंद. लोगों ने आशा व्यक्त की कि इस बार भी भारतीय दल को ओलिम्पिक हॉकी का स्वर्ण पदक जीतने में दिक्कत नहीं होगी. पर, 'सिर मुंडाते ही ओले पड़े' वाली कहावत चरितार्थ हुई.

बर्लिन के लिए रवाना होने से पहले ओलिम्पिक हॉकी दल दिल्ली के एक साधारण दल से 0-4 से हार गया. इस हार ने खिलाड़ियों के मन में दहशत-सी पैदा कर दी. पर, बर्लिन पहुँचते ही दल को इससे भी बड़ा धक्का लगा. एक आभास-मैच में जर्मनी के प्रस्तावित ओलिम्पिक हॉकी दल ने भारतीय दल को 4-1 हराकर इस दहशत को और गहरा कर दिया.

ध्यानचंद ने बाद में कहा, "मैं जब तक जीवित रहूँगा, इस पराजय के डंक को नहीं भूल पाऊँगा."

ओलिम्पिक हॉकी प्रतियोगिता में जर्मनी से मुकाबला होने से पहले भारत का हंगरी, अमरीका, जापान और फ्रांस से हुआ, जिन्हें भारत ने बड़ी आसानी से क्रमशः 4-0, 7-0, 9-0 और 10-0 से हराया. फाइनल जर्मनी से 14 अगस्त को होने वाला था, पर उस दिन वर्षा के होने के कारण 15 अगस्त को स्थगित कर दिया गया.

मैदान के भीग जाने पर, भारतीय खिलाड़ी अपना स्वाभाविक खेल नहीं खेल सकते थे. इस के अलावा, जर्मनी से पराजय की याद उन्हें अभी भी नहीं भूली थी. मैच के कुछ मिनट पहले, भारतीय खिलाड़ियों की घबराहट देखकर दल के मैनेजर पंकज गुप्ता ने अपने सामान से कांग्रेस का तिरंगा झण्डा निकाला, और उसे फहराकर खिलाड़ियों से इसकी लाज रखने को कहा. खिलाड़ियों ने सिर झुका कर झण्डे को प्रणाम किया, और 'करो या मरो' की भावना के साथ मैदान में उतरे.

जर्मन खिलाड़ियों में आत्मविश्वास तो था ही, उन्होंने भारत की चाल को बेकार करने के लिए भारतीयों जैसा खेल खेलना शुरू कर दिया. इस कारण, पूरा ज़ोर लगाने पर भी, भारतीय दल मध्यान्तर तक जर्मनी के दल पर सिर्फ एक गोल ही कर पाया.

मैदान पिछले दिन की भारी वर्षा के कारण काफी गीला था, जिससे सभी खिलाड़ियों को भागने और गेंद पर काबू पाने में बड़ी परेशानी हो रही थी. फिर भी, गेंद ज्यादातर 'ड्रिबलिंग' के माने हुए विशेषज्ञ ध्यानचंद के पास ही दिखायी देती थी. इस से चकित होकर जर्मन दल के कप्तान ने अम्पायर से ध्यानचंद की 'स्टिक' बदलने की अपील की, क्योंकि उन्हें सन्देह था कि ध्यानचंद ने अपनी स्टिक में गेंद को खींचने वाला कोई पदार्थ चिपका रखा है.

मध्यान्तर के बाद, ध्यानचंद ने अपनी स्टिक ही नहीं बदली, अपने मोजे उतार कर अपने 'स्वाइक्ड' जूते रबर के सोल वाले जूतों से बदल दिये. इससे मैदान में इनकी तेजी और फुर्ती और बढ़ गयी. उधर जर्मन खिलाड़ी भी पहले से अधिक उत्साह से खेल रहे थे—गोल उतारने के लिए. पर, तिरंगे की लाज बचाने को उन्मत्त भारतीय खिलाड़ियों के आगे उनकी एक न चल पायी और मध्यान्तर के बाद उन्हें भारत की ओर से एक के बाद एक सात गोल और स्वीकार करने पड़े. वे सिर्फ एक ही गोल कर सके. भारत को तीसरी बार ओलिम्पिक हॉकी प्रजेता पदक मिला. ●

'पराग' उद्धरण प्रतियोगिता 35 का परिणाम

सही उत्तर : 1—दीक्षा, 2—भ्रष्ट, 3—सामाजिक, 4—जाएंगी, 5—लातों, 6—विछोह, 7—सफलता, 8—रोटी, 9—शिष्टता, 10—धूल, 11—कर्म, 12—उत्पत्ति.

'पराग' उद्धरण प्रतियोगिता नं. 35 में इस बार न तो कोई सर्वशुद्ध हल प्राप्त हुआ, न ही एक अशुद्धि वाला हल. इसलिए प्रथम पुरस्कार दो अशुद्धियों पर 12 प्रतियोगियों ने जीता, जिनमें से प्रत्येक को 58 रुपये 34 पैसे प्राप्त हुए. इसी प्रकार तीन अशुद्धियों पर 34 प्रतियोगियों को पुरस्कार मिले, जिनमें से प्रत्येक को 8 रुपये 83 पैसे प्राप्त हुए.

अगर आपको पूरा भरोसा है कि आप का नाम पुरस्कार विजेताओं की सूची में नहीं है और आपका हल सही है तो आप 20 दिसंबर 1971 से पूर्व प्रतियोगिता संपादक, 'पराग' उद्धरण प्रतियोगिता, पो. बैग नं. 207, टाइम्स आफ़ इंडिया प्रेस, बंबई-1 के पते पर एक पत्र लिखें. उस पत्र में अपनी पूर्ति की अशुद्धियों की संख्या, पोस्टल आर्डर, मनी आर्डर या नकद रसीद का नंबर दें. साथ में जांच की फीस के रूप में एक रुपया मनी आर्डर या पोस्टल आर्डर द्वारा भेजें. यदि आपका दावा सही होगा, तो पुरस्कार की राशि को उसी के अनुसार फिर वितरित किया जाएगा.

पुरस्कार की राशि दिसंबर 1971 में कार्यालय से भेजी जाएगी.

दो अशुद्धियां : 12 विजेता : प्रत्येक को 58 रुपये 34 पैसे

1—कुमारी पुष्पिंदर कौर, द्वारा श्री पी. एन. चुघ, बी. ए., डी-33/बी, विजयनगर, दिल्ली-9. 2—कुमारी सुभाष बत्राना, द्वारा श्री पी. एन. चुघ बी. ए. डी-33/बी, विजयनगर, दिल्ली-9. 3—भुवनलाल साहू, ग्राम बम्हनी, पो. हटोदबाजार, बाया कसडोल, जिला रायपुर (म. प्र.) 4—कुमारी सुमन गुप्ता, बी/11/219, देवनगर, नई दिल्ली-5. 5—गोविंदराम आसवानी, कक्षा 10-ब, रघुराज हायर सेकेंडरी स्कूल, खंड नं. 2, शहडोल (म. प्र.). 6—वीरेंद्रकुमार, पुत्र श्री बनारसी दास केनक्शर ओनर, ग्रा. व पो. धनौरी, रुड़की, जिला सहारनपुर (उ. प्र.). 7—राजऋषि शर्मा, कक्षा 10, गवर्नमेंट हाई स्कूल, पो. दुमाना (जम्मू तवी). 8—ब्रजकिशोर गुप्ता, द्वारा श्री नरसिंह साहू, बड़ा नीमडीह, पो. आ. चाईबासा, जिला सिंहभूम (बिहार). 9—वी. के. खुल्लर, मकान नं. 313/9, जोशी रोड, करोलबाग, नई दिल्ली-5. 10—सुदेश मित्तल द्वारा श्री पी. डी. मित्तल, ए. ई. 108, सिविल लाइंस, बरेली (उ. प्र.). 11—कु. ईजाबेला तिर्थी, द्वारा श्रीमती टी. एन. तिर्थी, गुजराती स्कूल, कतरास रोड, धनबाद (बिहार). 12—प्रवीनकुमार, द्वारा एस. के. शा, मकान नं. 7/3, मुकर्जी लाइंस, ए. एफ. आगरा-8.

तीन अशुद्धियां : 34 विजेता : प्रत्येक को 8 रुपये 83 पैसे

1—सत्यप्रकाश, गां. व पो. जागमनवाला. 2—अशोककुमारसिंह, पो. हवेली खड़गपुर. 3—सरोज गर्ग, हांसी. 4—शैलेंद्रकुमार सिन्हा, अलीगढ़. 5—हरिकृष्ण शर्मा, आगरा. 6—समी अहमद, पो. सीतामढ़ी. 7—देवेंद्रकुमार और अंशुमाला, लखनऊ. 8—प्रतिमाकुमारी, चिड़ावा. 9—श्रीमती गीता औरंगाबादकर, भोपाल. 10—खालिद हमीद, भोपाल. 11—विनोद माहेश्वरी, रायपुर. 12—पंकज शूर, यमुनानगर, जिला अंबाला. 13—कुमारी एबिगेल सीमा, पो. बिरलाग्राम. 14—कुमारी अमिता शर्मा, नई दिल्ली. 15—मनोजकुमार, भागलपुर. 16—राकेशकुमार कुलश्रेष्ठ, बरेली. 17—राजकुमार साहू, पिपरिया. 18—रंजना गोडाणे, छिंदवाड़ा. 19—यशवीर सिंह गुप्ता, शिवपारा, दुर्ग. 20—एन. आर. उजेनकर, बुलडाणा. 21—विनोद शर्मा, बिहिया (शाहाबाद). 22—विजय बंगीलवार, पो. अजनी. 23—कुमारी नीलिमा मिज, पो. आ. एग्रिको, जमशेदपुर. 24—एस. सी. बत्राना, दिल्ली. 25—बी. के. कक्कड़,

(शेष पृष्ठ 42 पर)

1000 रुपये के नकद इनाम

'पराग' उद्धरण प्रतियोगिता नं. 38

सर्वशुद्ध या निकटतम पूर्ति पर 700 रु.
न्यूनतम अशुद्धियों पर 300 रु.

इस प्रतियोगिता के संकेत-वाक्य विस्तृत हिंदी साहित्य से लिये गए हैं. इसलिए जो पाठक सबसे अधिक पुस्तकें पढ़ते होंगे, उनके लिए खेल-खेल में एक हजार रुपये जीतने का यह स्वर्ण अवसर है.

सामने के पृष्ठ पर 14 संकेत-वाक्य दिए गए हैं. प्रत्येक वाक्य में एक शब्द का स्थान डैश लगाकर छोड़ दिया गया है. उसी पृष्ठ पर एक पूर्ति-कूपन है. जिसमें दो पूर्तियां दी गई हैं. जिस क्रमांक का संकेत-वाक्य है, प्रत्येक पूर्ति में उसी क्रमांक के आगे अकारादि क्रम से दो शब्द दिए गए हैं. उनमें से एक शब्द सही है, और दूसरा गलत. बस, आप गलत शब्द पर x का निशान लगा दीजिए.

'पराग उद्धरण प्रतियोगिता' के नियम और शर्तें

1—एक पूर्ति-कूपन में दो पूर्तियां दी गई हैं. आप एक पूर्ति भरें या दोनों—पूरा कूपन रेखाओं पर काटकर भेजना होगा. पूर्तियां 'पराग' में प्रकाशित पूर्ति-कूपनों पर ही स्वीकार की जाएंगी. यदि आप केवल एक ही पूर्ति भरें, तो दूसरी पूर्ति को क्रास कर दीजिए, और उसके नीचे पूर्ति क्रमांक आदि कुछ न भरिए.

2—पूरे कूपन की दोनों पूर्तियों का प्रवेश-शुल्क 1 रुपया और केवल एक पूर्ति का प्रवेश-शुल्क 50 पैसे है. दोनों में से किसी भी पूर्ति को आप पहली मान सकते हैं. एक ही नाम से आप चाहे जितनी पूर्तियां भेज सकते हैं. एक ही लिफाफे में अनेक नामों और परिवारों की पूर्तियां भेजी जा सकती हैं. लिफाफे के अंदर रखी सभी पूर्तियों का सम्मिलित प्रवेश-शुल्क एक ही पोस्टल आर्डर, मनी आर्डर, या नकद रसीद से भेज सकते हैं. किंतु ऐसी सभी पूर्तियों के नीचे कुल पूर्तियों की संख्या, उनके क्रमांक, और पूर्ति-कूपन में पोस्टल आर्डर, मनी आर्डर की रसीद, या नकद रसीद का नंबर लिखना अनिवार्य है. पोस्टल आर्डर, या डाकखाने से मिली मनी आर्डर की रसीद, या नकद रसीद पूर्तियों के साथ अवश्य नत्थी करके भेजिए. डाक-टिकट या करेंसी नोट प्रवेश-शुल्क के रूप में स्वीकार नहीं किए जाएंगे. आप कार्यालय में नकद रुपया जमा करके या डाक-खर्च सहित मनी आर्डर भेज कर 50 पैसे मूल्य की चाहे जितनी नकद रसीदें प्राप्त कर सकते हैं और उन्हें अगले चार महीने तक, प्रवेश-शुल्क के रूप में, पूर्तियों के साथ नत्थी कर सकते हैं.

3—बंबई के प्रतियोगी अपनी पूर्तियां 'टाइम्स आफ इंडिया भवन' के प्रवेश द्वार पर बनी 'स्थानीय प्रवेश पेटी' में डाल सकते हैं. बंबई से या डाक से आने वाली सभी पूर्तियों के लिफाफों के खुलने वाली तरफ भेजने वाले का पता, तथा उनके पीछे यह पता लिखा होना चाहिए—'पराग उद्धरण प्रतियोगिता नं.38', प्रतियोगिता विभाग, पोस्ट बैग नं. 207, टाइम्स आफ इंडिया भवन, बंबई-1. मनी आर्डर फार्मों और रजिस्टरी से भेजे जाने वाले लिफाफों पर 'पोस्ट बैग नं. 207' न लिखें. पोस्टल आर्डर क्रास कर दें. उसमें 'पाने वाले' के स्थान पर 'पराग उद्धरण प्रतियोगिता नं.38' और 'पोस्ट आफिस' के आगे—'बंबई-1'—लिखें. कृपया संपादक के नाम पूर्तियां या शुल्क न भेजें.

4—प्रथम पुरस्कार 700रु. उन प्रतियोगियों को मिलेगा, जिनकी पूर्तियों में संकेत-वाक्यों के सही पूरक शब्दों पर निशान नहीं होंगे, और सभी गलत शब्दों पर निशान लगे होंगे. यदि ऐसी कोई पूर्ति प्राप्त न हुई, तो उसके निकटतम अशुद्धियों वाली पूर्तियों पर प्रथम पुरस्कार दिया जाएगा. द्वितीय पुरस्कार 300रु. प्रथम पुरस्कार प्राप्त पूर्तियों से निकटतम अशुद्ध पूर्तियों पर प्रदान किया जाएगा. समान अशुद्धियों के एक से अधिक विजेताओं को घोषित पुरस्कार बराबर बांटे जाएंगे.

5—अपना नाम और पता प्रत्येक पूर्ति-कूपन पर सुपाठ्य और स्पष्ट अक्षरों में लिखिए. डाक में खो जाने वाली, विलंब से प्राप्त होने वाली, या गंदी व कटी-फटी पूर्तियां प्रतियोगिता में शामिल नहीं होंगी.

6—सभी पूर्तियां कार्यालय में पहुंचने की अंतिम तिथि सोमवार 10 जनवरी, 1972 है. अपनी पूर्तियां भेजने के लिए अंतिम तिथि की प्रतीक्षा न कीजिए. निर्धारित अवधि के प्रारंभिक दिनों में ही पूर्तियां भेज देने से आप अनेक भूलों से बच सकते हैं. सर्वशुद्ध शब्दावली तथा संबंधित पुस्तकों व पुरस्कार विजेताओं की सूची 'पराग' के मार्च, 1972 के अंक में प्रकाशित की जाएगी.

7—प्रतियोगी को इस प्रतियोगिता से संबंधित प्रत्येक विषय में प्रतियोगिता संपादक का निर्णय अंतिम रूप से मान्य होगा. वैधानिक रूप से विवादास्पद विषयों में बंबई के संबद्ध न्यायालय को ही निर्णय देने का अधिकार होगा.

8—नियमों के प्रतिकूल तथा पूर्ति-कूपनों में आवश्यक विवरण से रिक्त कोई भी पूर्ति प्रतियोगिता में सम्मिलित नहीं की जाएगी. 'पराग' तथा संबद्ध प्रकाशनों के कर्मचारियों को इसमें भाग लेने का अधिकार नहीं होगा.

'पराग' उद्धरण प्रतियोगिता नं. 38 संकेत वाक्य

1. खून से सना मुंह लिए बड़े लड़के ने छोटे की एक टांग पकड़ कर, एक साधारण खिलौने की तरह हवा में घुमाना शुरू कर दिया था. किसी भी क्षण वह उसे.....सकता था.
2. पास में कुछ निकला ही नहीं था....., लेकिन भीड़ में किसी न किसी की जेब कट गई थी.
3. बूढ़े ने फिर उंह-आंह की, और नजरें ऊपर उठाकर उसे घूरते हुए मुंह .....लेट गया.
4. अरे मैं तो लुट गई रे ! कसाइयों ने मेरी.....के गले पर छुरी फेर दी रे.....और इसके साथ-साथ उसने एक ही कंठ से अनेक मनुष्यों के समान कंठस्वर निकाल कर तुमुल आर्तनाद करना आरंभ कर दिया.
5. पंडित जी या तो शहर के.....के यहां चले जाते थे, या शाम के कांटे वाले के यहां महफ़िल जमाते.
6. मुकाबिला सख्त होगा और हज़ारों रुपए.....जाएंगे, कांग्रेस का मेम्बर जीते, इसमें कांग्रेस का भी लाभ है.
7. जैसे ही उसने.....के इस छोर को संभालने का प्रयत्न किया कि दूसरी ओर का छोर लटक कर हाथ में आ गया.
8. उस रानी ने अपना बोझ दूर करने के लिए बड़ी रानी को.....दिया. बड़ी ने ज़ोर के साथ पैर फटकारा.
9. आज वह शीशी.....हो उठी थी. उसने शीशी की झलक मात्र देखी थी. अधिक देख सकता, इससे पहले ही उसने रोशनी गुल कर दी.
10. अपने.....को छोड़कर कोई भी अपने पल्लवों के आश्रय पर नहीं रह सकता. अपने आधार को ग्रहण करके ही आधुनिक जगत् की सही प्रवृत्तियों को ग्रहण किया जा सकता है.
11. वे अपने देश में अपना रूप और अपना.....चाहते हैं. इस मांग की समीचीनता का मोटी-से-मोटी बुद्धि के व्यक्ति को भी आभास हो सकता है.
12. वह शायद व्यर्थ शर्मा रहा है. निरन्तर.....से उसका शरीर लाल हो गया था. उसका शरीर जलने लगा था.
13. "तुम ऐसे क्यों सोचते हो कि तुम्हारे सामने पहुंचते ही वह सिफ़ारिश कर देगी और तुम्हें ठोकर मारकर बाहर नहीं निकाल देगी. वह इतनी गहरी है कि तुम जैसे.....से अपने मकान में झाड़ लगवाए."
14. "मुझ में विश्वास रखो. एक बार मैं इम्तिहान में सफल हो गया तो हम दोनों इस शहर को छोड़ देंगे. कहीं दूर अपना घर....."

यहां से काटिए

'पराग' उद्धरण प्रतियोगिता नं. 38 (पूर्ति-कूपन)

शब्दों के प्रत्येक जोड़े में से जो शब्द आप गलत समझें, उस पर × का चिन्ह बना दें. यदि आप केवल एक ही पूर्ति भरें, तो दूसरी पूर्ति को क्रास कर दें.

1	छोड़	तोड़	1	छोड़	तोड़
2	उनके	उसके	2	उनके	उसके
3	चलाकर	चढ़ाकर	3	चलाकर	चढ़ाकर
4	गैया	मैया	4	गैया	मैया
5	कलालों	दलालों	5	कलालों	दलालों
6	उठ	उड़	6	उठ	उड़
7	दादी	साड़ी	7	दादी	साड़ी
8	अटका	झटका	8	अटका	झटका
9	प्रेतीली	प्रेमीली	9	प्रेतीली	प्रेमीली
10	कूल	तूल	10	कूल	तूल
11	यश	वश	11	यश	वश
12	चलने	मलने	12	चलने	मलने
13	बच्चों	सच्चों	13	बच्चों	सच्चों
14	बनाएंगे	बसाएंगे	14	बनाएंगे	बसाएंगे

यहां से काटिए

यहां से काटिए

पूर्ति क्रमांक :.... कुल पूर्ति संख्या :.... पूर्ति क्रमांक :..... कुल पूर्ति संख्या :....

इस प्रतियोगिता में भाग लेते हुए मुझे प्रतियोगिता के सभी नियम व शर्तें पूर्णतया स्वीकार हैं.

नाम व पूरा पता (स्याही से) :

पोस्टल आर्डर / मनी आर्डर रसीद / नकद रसीद / का नंबर : .....

यहां से काटिए

सभी पूर्तियां बंबई कार्यालय में पहुंचने की अंतिम तिथि : सोमवार 10-1-1972

पूर्तियां भेजने का पता : 'पराग' उद्धरण प्रतियोगिता नं. 38, प्रतियोगिता विभाग, पोस्ट बैग नं. 207, टाइम्स आफ इंडिया भवन, बंबई–1.

भारतीय किशोर जीवन (पृष्ठ 17 से आगे)

लिया है. वह रंगमंच को अपना कैरियर बनाना चाहता है. वह 'सेवेन स्टार क्लब' का सदस्य है. अभी तक बारह नाटकों में अभिनय कर चुका है और नेशनल स्कूल आफ ड्रामा में भरती होना चाहता है.

विनोद कामर्स का विद्यार्थी है. बी. कॉम. के बाद कानून पढ़कर वकालत करना चाहता है. पर अभी कुछ निश्चित नहीं. उसके पिता जी साइकिलों का व्यापार करते हैं और चाहते हैं कि विनोद पढ़ाई के बाद फैक्ट्री लगा ले.

भारतभूषण अपनी स्थिति को शौक के इस शेर के साथ व्यक्त करता है—

किस्मत से हूं लाचार,
कुछ ऐ शौक में वरना
हर फन में हूं मैं ताक़
मुझे क्या नहीं आता!

इसलिए इसे अभिनय, संगीत, कविता, कहानी सभी का शौक है. इसी बल पर इसे अनेक अंतर्महाविद्यालय प्रतियोगिताओं में पुरस्कार भी प्राप्त हो चुके हैं.

मैं पूछता हूं—"जो कविताएं या कहानियां तुमने लिखीं हैं, छपने के लिए भी भेजी हैं?"

वह कहता है—"आज तक कोई रचना छपने के लिए नहीं भेजी! छपेगी इसका विश्वास नहीं."

मैं पूछता हूं—"तुम्हारा किन्हीं साहित्यकारों से संबंध है, जिन्हें तुम रचनाएं दिखा सको?"

"आपसे. . ." वह झट से कहता है.

"पर मुझे तो तुमने आज तक अपनी कोई रचना न तो सुनाई, न दिखाई."

"लीजिए मेरी एक कविता सुनिए," कहकर वह मुझे अपनी एक कविता सुना देता है.

एक बात से सभी सहमत थे कि किशोर-जीवन में ही सेक्स-शिक्षा की विधिवत् व्यवस्था होनी चाहिए.

आलोक ने कहा कि ठीक ढंग से इस की शिक्षा नहीं मिलती, तो हम लोग इसे गलत तरीकों से सीखते हैं और हमेशा 'गिल्टी कॉंशेंस' रहते हैं.

विनोद ने कहा कि यह शिक्षा 'नेशनल सोशल सर्विस' योजना की तरफ से दी जानी चाहिए. उसने कहा कि इस देश में बहुत से रोगों का कारण सेक्स-शिक्षा का अधपका ज्ञान ही है.

स्वर्ण और वीना भी मानती हैं कि यह शिक्षा बहुत आवश्यक है. उनका कहना था कि यह शिक्षा स्कूलों में नौवीं कक्षा से शुरू होनी चाहिए.

जहां तक विवाह की बात है स्वर्ण का कहना है कि माता-पिता द्वारा निश्चित किया हुआ विवाह ही ठीक होता है. परंतु वीना इसमें थोड़ा संशोधन करती है. वह कहती है कि इसमें लड़की का मन भी अवश्य जानना चाहिए.

सुनीता कहती है—"हमारे परिवार में जितने सजातीय विवाह हुए, उनमें से अधिकांश असफल रहे. इस संबंध में मैं मानसिक संतोष को प्राथमिकता देती हूं."

रानी और आभा दोनों ही मानती हैं कि यदि प्रेम हो, तो अंतर्जातीय विवाह भी ठीक है.

भारतभूषण कहता है—"मैं ऐसी लड़की से शादी करना चाहता हूं जो थोड़ी खूबसूरत, थोड़ी अकलमंद और थोड़ी पढ़ी-लिखी हो. उसमें मुझे समझने की शक्ति हो. ऐसी लड़की कहां से आएगी, पता नहीं."

आलोक कहता है—"हमें पहले एक-दूसरे को पूरी तरह समझ लेना चाहिए, फिर विवाह करना चाहिए."

●

सुनीता का कहना है कि फैशन घर की आर्थिक स्थिति के अनुकूल होना चाहिए. उसे ज्यादा टिप-टॉप रहना पसंद नहीं.

रानी कहती है—"हर लड़की चाहती है कि वह अच्छी दिखे. मुझे कुर्त्ता-पजामा सब से अच्छा लगता है. वैसे मैं लुंगी, बेलबॉटम और पैरेलल भी पहन कर देखना चाहती हूं. पर मेरे घर वाले मुझे यह नहीं करने देंगे."

सुनीता भी कहती है—"मैं एक बार सभी तरह की पोशाकें पहनकर देखना चाहती हूं."

आभा कहती है—"फैशन वह करना चाहिए, जो अच्छा लगे. वह हास्यास्पद नहीं लगना चाहिए. मुझे त्योहार के अवसर पर साड़ी पहनना अच्छा लगता है."

रानी ने कहा—"मैंने एक बार साड़ी पहनी तो पिता जी ने डांट दिया. कहने लगे, साड़ी में तू बहुत बड़ी लगती है और तब तेरे विवाह की चिंता सिर पर सवार हो जाती है!"

स्वर्ण कहती है—"जैसा देश वैसा भेष. उड़ीसा में तो कुर्त्ता-पजामा का रिवाज ही नहीं है. सभी साड़ी पहनते हैं. पर यहां मुझे इस वातावरण के अनुकूल कुर्त्ते-पजामे सिलाने पड़े हैं."

वीना कहती है—"नए-नए फैशन करने को मन तो करता है, पर लोग छींटाकशी बहुत करते हैं."

स्वर्ण ने बताया—"एक बार मैं कॉलेज में सफेद साड़ी पहनकर आई, तो किसी लड़के ने आवाज कसी—सिस्टर'. मैंने पलटकर देखा और कहा—'ड्रेसिंग करानी हो तो करा लो!' तब से कोई कुछ नहीं कहता."

वीना कहती है कि हमें लड़कों के रिमार्क्स की ज्यादा चिंता नहीं. वह बुरा भी नहीं लगता. पर गुस्सा तो उन लोगों की भद्दी छींटाकशी पर आता है जो उम्र में हमारे डैडी के बराबर हैं. इन 'डैडी टाइप' लोगों से तो भगवान बचाए.

एक बात मैंने बहुत व्यापक रूप से देखी. ये सभी लोग हिंदी फिल्मों के पिटे-पिटाए ढर्रे से बहुत ऊब चुके हैं और नए ढंग की फिल्मों का स्वागत कर रहे हैं. इस बीच प्रदर्शित 'सारा आकाश', 'आनंद', 'दस्तक', 'चेतना' और 'गुड्डी' जैसी फिल्में उन्हें बहुत अच्छी लगी हैं.

सुनीता कहती है—"दस्तक तो बहुत प्रतीकात्मक फिल्म है. मैना पालना, कोड वर्ड रखना और अपनी बोरियत को खत्म करने के लिए नायिका का सिगरेट का कश लेना आदि दृश्य मुझे बहुत अच्छे लगे."

रानी बोली—"इस फिल्म में राजेंद्रसिंह बेदी का निर्देशन बहुत अच्छा है. मुझे हृषीकेश मुखर्जी का निर्देशन भी अच्छा लगता है. अभिनेत्रियों में वहीदा रहमान और रेहाना सुल्तान मुझे बहुत पसंद हैं."

आभा ने सत्यजीत रे की 'महानगर', 'कापुरुष-महापुरुष' आदि कई फिल्में देखी हैं. वह उनकी बड़ी प्रशंसक है. नए कलाकारों में वह शत्रुघ्न सिन्हा और अमिताभ बच्चन को पसंद करती है—"अमिताभ की आँखों में गहराई है!"

स्वर्ण पर गुड्डी फिल्म ने बड़ा असर डाला है. वह कहती है—"फिल्मों की चमक-दमक कितनी खोखली होती है, यह मैंने इस फिल्म को देखकर जाना है."

आलोक कहता है—"मैं फिल्मों में एक-एक चीज बड़े ध्यान से देखता हूं—निर्देशन, फोटोग्राफी, अभिनय, आर्ट डायरेक्शन."

और वह राजकपूर से मिलकर उसके दिल की असली हालत जानना चाहता है.

आज के किशोर-किशोरियों में राजनीति के प्रति अधिक रुझान तो नहीं है, परंतु वे राजनीतिक प्रश्नों के प्रति काफी जागरूक हैं.

'पराग' द्वारा आयोजित इस आकलन ने दिल्ली के किशोरों में अच्छी खासी हलचल पैदा कर दी है. बहुत से लड़के-लड़कियां अपनी बात कहना चाहते हैं. सच बात तो यह है कि अपनी बात कह सकने की ललक तो उनके अंदर कब की घुमड़ रही थी, 'पराग' ने उन्हें एक मंच दे दिया है.

परंतु सही-सही बात कहने के खतरे भी बहुत हैं. इसलिए कुछ एक 'सेंसिटिव प्वाइंट्स' पर आकर वे घबराने भी लगते हैं.

लीजिए, पिछले आकलन में एक लड़का मेरे सामने यह बात मान गया था कि वह सिगरेट पीता है पर जब उसके घरवालों ने यह बात पढ़ी, तो उस की अच्छी कान खिंचाई हुई! ●

एच-108, शिवाजी पार्क, नई दिल्ली-26

रंग भरो प्रतियोगिता नं. 111 का परिणाम

'पराग' की रंग भरो प्रतियोगिता नं. 111 में जिन तीन प्रतियोगियों के चित्रों को पुरस्कार योग्य चुना गया है, उनके नाम और पते इस प्रकार हैं :

- साधना चोपड़ा, 24 ऋषिनगर, शकूरबस्ती, दिल्ली-34.
- अजीतकुमार, सुपुत्र श्री आर. डी. रावत, क्वार्टर नं. 54 ए. बी. टाइप टू. रेलवे कालोनी, पतरातू, हजारीबाग (बिहार).
- वीरेंद्रकुमार श्रीवास्तव, द्वारा श्री ललित कुमार श्रीवास्तव, एल. क्यू. 7, साइंस कॉलेज कालोनी, रायपुर (म. प्र.)

प्रयास करने वालों में से इनके प्रयास अच्छे रहे :

कु. पुष्पा देवी, कानपुर; अब्दुल नईम, वाराणसी कैंट; राजीवकुमार, भुवनेश्वर; कु. साधना ढांड, रायपुर; वेणुपाणि, चंदौसी; शरत गुप्ता, बरेली; कु. विमला अवस्थी, सीतापुर; कु. ऊषा रानी, जौनपुर; रमेशकुमार, लखनऊ; विपिनचंद्र पांडे, अल्मोड़ा; दिलीप कुमार गुप्ता, धार; सुभाषचंद्र पाल, गोरखपुर; मनोज सिंगल, मुरादाबाद; कुलदीपकुमार श्रीवास्तव, लखनऊ; रामबचन शर्मा, कोरापुट; चंद्रमोहन शांतिदेवी खत्री, बंबई; दिनेशचंद्र यादव, उदयपुर; गजेंद्र गुप्ता, गाजीपुर; चंद्रकला शर्मा, रांची; डलेश श्रीवास्तव, वाराणसी; प्रवीन कुमार, चंडीगढ़; अशोक कुमार पुरी, चनैहनी; सीमा रानी, हरदोई; हरदीप सिंह, दिल्ली; पवनकुमार श्रीवास्तव, बाराबंकी; पुष्पलता वर्मा, भोपाल; जी. काशीनाथ, हैदराबाद; अंजुलाकुमारी, नई दिल्ली; संजय मांगलिक, चंदौसी; मनोज कुमार, देवरिया; जनेशकुमार, गुड़गांव; सैयद मोहम्मद अरशद अली, जौनपुर; मीना नागी, बर्दवान; अनिता शर्मा, जयपुर; संतोष कुमार सिंह, हजारीबाग; पूर्ण सिंह, जम्मू; कुलदीपकुमार कौशिक, दिल्ली; फिरोजबख्त, दिल्ली; बीना सिंह, हजारीबाग; उदयचंद्र तिवारी, पटना; रविंद्रकुमार सेठ, सोनीपत; कु. ललिता द्विवेदी, लखनऊ; सुखदेव सिंह जम्मू; विनोद कपूर, सहारनपुर; शोभा दे, मुंगेर; उमेशकुमार भटनागर, रूड़की; देवेंद्र पाल सिंह, नई दिल्ली. ●

'पराग' रंग भरो प्रतियोगिता 114

बच्चों, नीचे का चित्र है न मजेदार! काश, यह रंगीन होता, तो क्या ही कहना था!

चलो, तुम ही रंग भरकर इसे हमारे पास 20 दिसंबर तक भेज दो. हां, अगर तुम्हारा खयाल हो कि चित्र की पृष्ठभूमि को तुम अपनी कल्पना से और ज्यादा उभार सकते हो, तो रंगों द्वारा उसे चित्रित करने की तुम्हें स्वतंत्रता है. सबसे अच्छे रंग भरने वाले तीन प्रतियोगियों को एकसे सुंदर इनाम मिलेंगे. लेकिन रंग भरने वालों की उम्र 12 साल से अधिक नहीं होनी चाहिए और उन्हें 'वाटर कलर' ही उपयोग में लाने चाहिएं. चित्र के नीचे वाला कूपन भरकर भेजना जरूरी है. पूर्तियां भेजने का पता : संपादक, 'पराग' (रंग भरो प्रतियोगिता नं. 114), 10 दरियागंज, दिल्ली-6.

यहां से काटो

यहां से काटो

यहां से काटो

कूपन

'पराग' रंग भरो प्रतियोगिता - 114

नाम और उम्र ----------

पूरा पता ----------

यहां से काटो

'वर्जित फल' यौन-शिक्षा (पृष्ठ 29 से आगे)

आ गया है. युवक तथा युवतियों में अनुशासन हीनता और उच्छृंखलता बढ़ती जा रही है या नैतिकता का ह्रास हो रहा है.' और भी तरह-तरह के आरोप लगाए जाते हैं. इस तरह दोषारोपण करके वे अपने छात्र जीवन की तुलना

आज के छात्रों से करते हैं. वे आज के तौर तरीकों से समझौता करने को तैयार नहीं हैं. यौन-शिक्षा के रास्ते में यही सब से बड़ी रुकावट है.

अमेरिका में कई दशकों से यौन युक्त जीवन बिताया जाता रहा है परंतु यहां अभी भी यौन-विषयक बातों को अश्लील समझा जाता है. इतना ही नहीं, कहीं कहीं तो सहशिक्षा को भी हमारे यहां बुरा समझा जाता है, जबकि पश्चिमी देशों में 19वीं शताब्दी में ही सहशिक्षा प्रचलित हो गई थी. सहशिक्षा से मैं यह मानती हूं कि यौन शिक्षा का उद्देश्य कुछ सीमा तक पूरा हो जाता है. वहां विपरीत सेक्स के बारे में ज्ञान हो जाता है. भारत में हम अभी ऐसा वातावरण नहीं बना पाए हैं. सेक्स आकर्षण को समाप्त करने के लिए मैं सहशिक्षा अनिवार्य मानती हूं.

कुमारी मीरा भार्गव, बी. एड. (अंतिम वर्ष)
लेडी इर्विन कॉलिज, नई दिल्ली.

●'चीप रोमांस' की आड़ में यौन-ज्ञान और हमारी महान परंपराएं....'

आज के छात्रों को अपने भविष्य की चिंता खाए जा रही है. उन में असंतोष मात्र सेक्स के कारण ही नहीं है. उस का मुख्य कारण है बेरोजगारी. भूख, सेक्स, और नींद को जितना बढ़ाया जाए, बढ़ जाएगी, पर उस पर नियंत्रण करना भी हमारे अधिकार की बात है. नैतिक शिक्षा का आज लोप हो रहा है. सेक्स की भूख बढ़ने का यह भी एक कारण है.

छात्र-छात्राओं को यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि वे उस देश में जन्मे हैं, जहां राम-कृष्ण और सीता ने जन्म लिया था. भारत धर्म-परायण देश है. हमारी अपनी परंपराएं हैं, अपनी महान संस्कृति है. चीप रोमांस की आड़ में यौन-ज्ञान कभी भी उपयोगी नहीं रहेगा.

हां, जब भारतीय वातावरण यौन शिक्षा के उपयुक्त बन जाए, उस समय यौन शिक्षा अवश्य दी जाए. समय की प्रतीक्षा करना हमारा कर्तव्य है.

श्री नरेशचन्द्र गौड़, अध्यक्ष : छात्रसंघ
श्याम लाल कालिज, दिल्ली विश्वविद्यालय.

●'संतुलन करते हुए....'

'यौन-शिक्षा को भारतीय विश्वविद्यालयों में अवश्य प्रचलित करना चाहिए. पर पढ़ाने का ढंग बहुत सुरुचिपूर्ण और वैज्ञानिक हो, ताकि छात्राएं इसे अश्लील विषय समझकर मुंह न मोड़ लें. विद्यालयों में इस विषय पर शिष्ट ढंग से चर्चा हो तो काफी हद तक माता पिता की समस्याएं हल हो सकती हैं. वे आज के बिगड़ते वातावरण से आशंकित हो उठे हैं.

आज छात्र-छात्राओं में मद्यपान, धूम्रपान, तथा अश्लील साहित्य पढ़ने का व्यसन बढ़ता जा रहा है. हमें उन के असंतोष के मूल को पकड़ना चाहिए, ताकि ये दुर्गुण उन्हें हानि न पहुंचा सकें. इस के लिए जहां अन्य कई साधन हैं, वहां यौन शिक्षा को भी आवश्यक माना जाना चाहिए.

हमें अपने सांस्कृतिक मूल्यों, और परंपराओं का दामन नहीं छोड़ना चाहिए; साथ ही दोनों का संतुलन करते हुए नई हवा को भी पहचानना चाहिए.

कुमारी प्रेमा मचाई, एम. एस-सी. (अंतिम वर्ष)
लेडी इर्विन कालिज, नई दिल्ली. ●

उद्धरण प्रतियोगिता 35 का परिणाम (पृष्ठ 38 का शेष)

दिल्ली. 26—ज्ञानप्रकाश गुप्ता, कोलाबा, बंबई. 27—दीपकचंद्र टंडन एवं कुमारी सोमा टंडन, वाराणसी. 28—वीरेंद्रनाथसिंह, पो. बलौदाबाजार. 29—अरुणकुमार वर्मा, बिजनौर. 30—श्रीमती रामकली देवी, चंदौसी. 31—ठाकुरदास लखमानी, मो. हरदोई. 32—अशोकानंद, अजमेर. 33—फराज अली तालिबी, आगरा. 34—कविता उपाध्याय, सागर.

जिन पुस्तकों से संकेत-वाक्य लिये गए

1—रवींद्र साहित्य भाग 18—अनु. धन्यकुमार जैन—प्र. रवींद्र साहित्य मंदिर, कलकत्ता, पृ. 59. 2—उपर्युक्त—पृ. 60. 3—आजादी की मंजिलें—ले. मार्टिन लूथर किंग—प्र. सर्व सेवा संघ, वाराणसी—पृ. 41. 4—उपर्युक्त—पृ. 52. 5—उपर्युक्त—पृ. 62. 6—शरतचंद्र—ले. मन्मथनाथ गुप्त—प्र. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली—पृ. 37. 7—फूल जो सदा महकते ही रहेंगे—ले. व्यथित हृदय—प्र. विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली—पृ. 26. 8—रवींद्र का बाल साहित्य—अनु. युगजीत नवलपुरी—प्र. साहित्य अकादमी, दिल्ली—पृ. 48. 9—बहता हुआ पानी—ले. राजेंद्र अवस्थी—प्र. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली—पृ. 14 10—उपर्युक्त—पृ. 18. 11—मंजिल से आगे—ले. महावीर अधिकारी—प्र: हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर, बंबई—पृ. 19. 12—उपर्युक्त—पृ. 21: ●

नन्हे-मुन्नों के लिए नए शिशु गीत

पिछले कई वर्षों से 'पराग' में शिशु गीत छापे जा रहे हैं. इन शिशु गीतों के चयन में बड़ी सावधानी बरती जाती है, क्योंकि शुद्ध शिशु गीत लिखना उतना आसान नहीं है जितना समझा जाता है, इसी लिए अच्छे गीत बहुत कम लिखे जाते हैं. ये गीत ऐसे होने चाहिएं कि इन्हें चार से छह साल तक के बच्चे आसानी से जबानी याद कर लें और अन्य भाषा-भाषी किशोर भी इनका आनंद ले सकें. इनसे मुहावरेदार हिंदी सरलता से जबान पर चढ़ जाती है.

सर्वोदय बाल पुस्तकालय
उ०सं०.....
बिजनौर

बब्बी-डब्बी

बब्बी बोला–"इस चूजे ने,
कैसे अंडा तोड़ा?
कैसे फिर यह बाहर आया,
चलता थोड़ा-थोड़ा?"

"मगर बताओ पहले, बब्बी,"
डब्बी बोला ऐसे,
"अंडे के भीतर यह चूजा
पहुंचा होगा कैसे?"

—श्रीप्रसाद

kissekahani.com

सड़क और पत्ता

बोला उड़ पीपल का पत्ता,
"चाहूं तो पहुंचूं कलकत्ता!
कहने को तू सड़क बड़ी है,
पर बरसों से यहीं पड़ी है!"

बोली सड़क—"न शेखी मार,
मैं तो जाती कोस हजार!"

—सीताराम गुप्त

गरम सूट

गरम सूट का कपड़ा लेने
आए हाथी दादा;
बंदर बोला—"वह कपड़ा दूं,
बनें आप शहजादा!

"बस बतलाएं काटूं कितना
जल्दी से, श्रीमान?"
बोला हाथी—"काटोगे क्या,
पूरा दे दो थान!"

—निरंजनलाल मालवीय 'अविचल'

कर्ज (पृष्ठ 5 से आगे)

उसकी कल्पना से भी परे थी कि इस तरह घर से भागे हुए सभी लड़के बिशन नहीं, भिखारी भी बन सकते हैं.

तभी पास ही सीट पर बैठी महिला ने अपना 'टिफिन' खोला, तो पूरियों और सूखे आलुओं की सब्जी की महक रतन की श्वांसों में समा गई. आम के अचार की सुगंध से तो मुंह में पानी ही भर आया. कुछ दिन पहले दशहरे की छुट्टियों में जब वह नई मां के साथ नानी के घर गया था, तब मां ने भी इसी तरह रास्ते में पूरियां, आलू और अचार खिलाया था.

कितना पसंद है उसे आम का अचार! परंतु कभी भी वह जी भर कर नहीं खा पाया. हमेशा ही मां जरा-सा देकर बहला देती. 'बेटे अचार खाने से तेरी इतनी अच्छी आवाज खराब हो जाएगी, बस तनिक-सा ले ले.'

और. . . आज रतन के सामने यह सच्चाई भी आ गई थी—कि वास्तव में मां उसे अचार देना ही नहीं चाहती थी. वह तो उसने केवल अपने और अपने बच्चों के लिए ही रक्खा था.

महिला ने अपने दोनों पुत्रों को, पूरियों पर आलू व अचार रखकर दिया और फिर वह स्वयं खाने लगी. उनको खाते हुए देखकर रतन की भूखी आंतों में कुलबुलाहट होने लगी और एक बार उसने इतनी भूखी निगाहों से महिला की ओर देखा कि उसने दो पूरियों पर सब्जी-अचार रखकर उसकी ओर भी बढ़ा दिया. रतन ने बिना किसी संकोच के उसे ले लिया और इस तरह खाने लगा, जैसे कई दिनों का भूखा हो. परंतु खाते-खाते न जाने क्यों, उसकी आंखें भर आईं. उसने दृष्टि नीचे झुकाली कि कहीं महिला कुछ पूछ न बैठे.

"लो. . . और ले लो. . ." महिला के हाथ दो पूरियों के साथ फिर बढ़े तो वह इंकार न कर सका.

पेट में अन्न पहुंचा, तो उसे कुछ राहत मिली. एक बड़ी भारी समस्या हल हो चुकी थी. ट्रेन तेजी से चली जा रही थी. इस बीच वह कई स्टेशनों पर रुकी. कुछ यात्री उतरे, कुछ चढ़े. कुछ ऊंघ रहे थे तो कुछ टांगे फैलाए हुए पूरी बर्थ घेरे पड़े थे. ऐसा लगता था, जैसे रतन और उस महिला की ही आंखों में नींद नहीं थी. उसने किसी तरह थोड़ी-सी जगह में अपने दोनों पुत्रों को लिटा दिया था और स्वयं सिकुड़ी-सिमटी बैठी उन पर हाथ का पंखा झल रही थी, क्योंकि भीड़ के कारण गर्मी अधिक हो गई थी. कभी-कभी वह रतन की ओर देखती, तो रतन को ऐसा लगता, जैसे वह उससे कुछ बोलने वाली है. अजीब अपराधी भावना से पीड़ित उसका मन किसी पर प्रकट नहीं होना चाहता था. अपनी कमजोरी वह किसी से कहना नहीं चाहता था. शायद यही कारण था कि वह उस महिला की दृष्टि से बचने का प्रयास करता रहा!

उसकी बोझिल आंखों में अनेक चिंताओं के कारण नींद का नाम नहीं था. बस, नींद का बोझ ही बोझ उन्हें भारी किए दे रहा था. विचार, कभी यहां, कभी वहां, कभी और कहीं भटक रहे थे. क्या उसने यह कदम सोच-समझकर उठाया है? क्या यह सच है कि मां को उससे प्यार नहीं? मन में कुछ कचोट-सा उठता. कोई आवाज आती-सी जान पड़ती—'लौट जाओ रतन, तुम्हारी मां ढूंढ़ते-ढूंढ़ते थक गई है, रोते-रोते उसकी आंखें सूज गई हैं. उसने कस कर आंखें बंद कर ली और जब फिर भी इन विचारों से मुक्त नहीं हो सका, तो उसके ओंठों से एक गीत अनायास ही फूट पड़ा.

'मन रे! आस के बंधन टूटे!
नेह के बंधन झूठे. . . !'

उसकी मधुर आवाज सुनकर महिला मुग्ध हो उठी. अनेक यात्रियों की बंद आंखें खुल गईं. गीत ने सभी का मन मोह लिया.

आंखें बंद किए हुए बड़ी तन्मयता से वह गा रहा था. दूसरा अंतरा गाते-गाते उसकी आंखों से झर-झर आंसू बहने लगे. फिर भी उसने आंखें नहीं खोलीं. दोनों कलाइयों को घुटनों पर टिकाए हुए वह बैठा रहा—एक हथेली ऊपर की ओर थी, दूसरी नीचे की ओर. सहसा एक हथेली में कुछ सरसराहट हुई, तो उसने आंखें खोल दीं. हथेली पर एक रुपए का नोट रक्खा था. उसने उसे घूर-घूर कर देखा. उसका मन दुःख और घृणा से भर उठा. इतनी ही देर में कितना बदल गया है उसका जीवन कि लोगों की दृष्टि में वह भिखारी बन गया है. उसकी आंखों के सामने जैसे मां आकर खड़ी हो गई, 'बेटा, एक गीत मेरे मन का भी सीख ले. तेरी आवाज़ में बहुत अच्छा लगेगा.' छह-सात दिनों पहले ही मां ने कहा था. फिर हारमोनियम पर धुन में बांधकर उसने ही रतन को सिखाया था और नित्य ही एक बार रतन से वह गीत सुनकर जब वह रो पड़ती, तो रतन का मन विधवा मां के मन की व्यथा से भीग जाता.

'नहीं. . . वह यह रुपया नहीं लेगा! मां ने गीत इसलिए नहीं सिखाया था. न ही उसने इसलिए गाया था. वह तो बस न जाने कैसे अपने आप ही उसके मुंह से निकल पड़ा. उसने घृणा से रुपए को देखा और मुट्ठी भींचकर उसे मसल कर खिड़की से बाहर फेंकने के लिए हाथ बढ़ाया कि किसी ने उसकी कलाई पकड़ ली. घूमकर देखा तो वही महिला उससे पूछ रही थी, "रुपया फेंक क्यों रहे हो?"

"क्योंकि मैं भिखारी नहीं हूं. . . भले घर का लड़का हूं, मुझे भीख नहीं चाहिए."

". . . मगर यह तो भीख नहीं, पुरस्कार है. . . मेरा आशीर्वाद है. अपने बच्चों के किसी अच्छे काम पर प्रसन्न होती हूं, तो उन्हें ऐसे ही पुरस्कार देती हूं."

"बेटे?" कितनी देर बाद उसके कानों में यह शब्द पड़ा था. उसने कुछ पल उसकी ओर देखा और फिर रुपये को जेब में रख लिया.

"गाना तो बहुत सुंदर गाते हो," गाड़ी की कर्कश आवाज के बीच महिला का मधुर स्वर रतन को बहुत भला लगा.

"कहां जा रहे हो! कोई साथ नहीं है क्या?"

रतन ने उसकी ओर देखा. फिर उसकी बड़ी-बड़ी आंखें नीचे झुक गईं! ओंठ हिले, परंतु शब्द नहीं फूट सके.

"लगता है, घर से रूठ कर जा रहे हो, क्यों? बहुत दुखी जान पड़ते हो."

इस प्रश्न ने रतन के मर्म पर आघात किया और वह खीझ कर बोला—"हां,हां, रूठकर घर से भागा हूं. . . लेकिन आप को क्या?"

"इतनी बुरी लगी मेरी बात? लो अब नहीं बोलूंगी. . ." उसने रतन की ओर से मुंह फेर लिया तो रतन को ऐसा लगा, जैसे आज फिर उसने किसी के अपनत्व का तिरस्कार किया है.

थोड़ी ही देर बीती थी कि महिला उठकर बाथ-रूम चली गई. उसके जाते ही रतन के सामने टिकट चेकर आ खड़ा हुआ.

"टिकट दिखाओ." उसकी आवाज से वह कांप उठा! अब क्या करे ?

"कहां जा रहे हो? टिकट दिखाओ," टिकट-चेकर की क्रोध मिश्रित वाणी गूंजी, तो रतन पसीने-पसीने हो उठा. वह इधर उधर असहाय दृष्टि से ताकने लगा. उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया.

"ठहरिए. . ." सहसा महिला की आवाज सुनकर रतन की चेतना लौट आई, "यह मेरे साथ है. ट्रेन चल दी थी, इसलिए टिकट नहीं बनवा पाई थी.—बड़ी मेहरबानी होगी. इसका टिकट बना दीजिए." पर्स से दस का नोट निकालकर महिला ने टिकट चेकर की ओर बढ़ा दिया. और टिकट चेकर कुछ खीझी हुई नजरों से एक बार रतन की ओर देखता हुआ टिकट बनाकर दूसरे यात्रियों की ओर बढ़ गया.

रतन की झुकी हुई दृष्टि और झुक गई. क्या मिला उसे घर से भागकर? जितना आसान घर से भागना है उतना ही आसान क्या इन सारी विपदाओं से निपटना भी है? दूसरों के टुकड़ों से पेट भरा, दूसरों के पैसों से इज्जत बची! और सहसा वह यह सोचकर कांप उठा

कि यदि यह महिला न मिलती तो. . . . ?

"कब तक इस तरह काम चलेगा! घर लौट जाओ. . . ." महिला के शब्द कानों में पड़े तो उसके विचारों की शृंखला टूटी!

"कौन से घर?. . . न मां न पिता! सौतेली मां की बातें सही नहीं जातीं. फेल हो गया तो इतनी जोर से डांटा कि. . ." और उसके आंसुओं का बांध टूट गया.

"बस ! इतनी-सी बात पर घर छोड़ दिया? या और कुछ. . . .? कहां जाओगे?"

"पता नहीं. . . . "

"इन्हें देखते हो. . . . ?" कुछ पल चुप रहने के बाद महिला ने अपने बच्चों की ओर संकेत करके रतन से कहा, "तुमने देखा कि मैंने इन्हें पहले खिलाया; इनके सोने की जगह पहले की और इनको गर्मी लग रही होगी, इसलिए इन पर पंखा झल रही हूं . जानते हो, क्यों ?"

"क्योंकि ये आपके बच्चे हैं!" रतन बोला.

"हां, ये मेरे ही बच्चे हैं. मगर वैसे ही, जैसे तुम अपनी मां के हो ! मैं भी इनकी अपनी मां नहीं, दूसरी मां हूं. . . .!"

रतन अवाक् बना-सा उसकी ओर देखने लगा, जैसे कोई आश्चर्य की बात सुनी हो.

"इनमें एक लड़का तुम्हारी ही उमर का है. पिछले साल गलत संगति में पड़कर फेल हो गया था. . . ."

"फिर. . . ?"

"मैंने भी उसे बहुत डांटा था, इनके पिता तो दूसरी जगह नौकरी करते हैं, मेरे ही ऊपर इनका भार है. सारे दिन भूखा रक्खा था, बोली भी नहीं."

"फिर कब बोली थीं आप?" रतन ने उत्सुकता से पूछा.

जब सवेरे उसने मुझसे माफी मांगी, अगले साल अच्छे नंबरों से पास होने के लिए मन लगाकर पढ़ने का विश्वास दिलाया, तब! वह भी मुझे सौतेली मां समझकर मेरी डांट से नाराज होकर घर छोड़ सकता था, मगर. . ."

"मगर क्या. . . ?"

"यही कि उसमें इतनी समझ थी कि मां केवल मां होती है. सौतेली मां की डांट-फटकार में भी संसार के कल्याण की भावना होती है. डांटती तो अपनी मां भी है, फिर दूसरी मां की डांट का ऐसा प्रभाव क्यों?"

रतन स्तब्ध-सा उसकी बातें सुन रहा था. उसका जी चाह रहा था कि वह इसी तरह बोलती रहे और वह सुनता रहे. उसका एक-एक शब्द रतन के तपते हुए मन पर शीतल स्निग्ध बौछारों की तरह लग रहा था. अनायास ही उसके मन के अंधेरे में प्रकाश की कोई किरण झिलमिलाने लगी. आंखों में मां की क्रोधभरी आंखें नहीं, ममता का रस छलकाती हुई आंखें उभर आईं और वह होंठों पर मुस्कान बिखेर कर पूछ बैठा—"आपका बेटा अबकी बार पास हो गया?"

"हां, बहुत अच्छे, नंबरों से. मन को सही दिशा में लगाने के बाद कौन-सा कार्य असंभव है!"

"तुम्हारी मां तुम्हें कभी प्यार भी करती है?" कुछ देर बाद महिला बोली.

"बहुत प्यार करती है. यह गीत भी उसी ने सिखाया है. तभी तो उसकी डांट एक दुत्कार की तरह लगी."

"कोई बात नहीं, बेटे, मां की दुत्कार भी प्रेरणा लेने की चीज होती है! उसका प्यार और त्याग याद रखने की चीज होती है. तुमने एक बड़ा भारी अपराध किया है मां के प्रति और अपने प्रति भी. मैं चाहूं तो तुम्हें पुलिस के हवाले भी कर सकती हूं, मगर मुझे विश्वास है कि एक समझदार लड़के की तरह तुम यूं ही घर लौट जाओगे. . .या मेरे साथ चलो, मैं भिजवा दूंगी. . . "

रतन किसी गहरे सोच में डूब गया.

"क्या सोचने लगे? चलोगे मेरे साथ?"

"मां राह देख रही होगी, वहीं जाऊंगा. . ." रतन की आवाज भारी हो उठी.

"शाबाश! मैं तुमसे यही सुनना चाहती थी. लो, ये दस रुपए लो. गाड़ी रुकते ही उतर जाना और चले जाना."

महिला की उंगलियों में अटके दस के नोट की ओर वह एकटक देखता रहा.

"अब क्या सोच रहे हो? गाड़ी रुक गई है... जाते क्यों नहीं?" महिला ने आत्मीयता से कहा.

"सोच रहा हूं, कितनी दयामयी हैं आप! आप न मिलतीं, तो मैं कहीं का भी न रहता. मगर आपके इस उपकार का बदला, आपका यह यह कर्ज मैं कैसे चुका पाऊंगा?"

"एक अच्छा-सा मीठा-सा पत्र लिखकर कि तुमने मां के आंसू खुशी में बदल दिए हैं—बोलो, लिखोगे ना? लो, यह मेरा पता है." बड़े प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए उसने एक स्लिप उसे पकड़ा दी.

महिला का आशीर्वाद लेकर रतन गाड़ी से नीचे उतर आया. रात के अंधेरे में महिला का दूर तक हिलता हुआ हाथ जब तक उसे दिखा, वह देखता रहा, फिर वेटिंग-रूम में जाकर लेट गया था!

उसके हृदय की उथल-पुथल शांत हो चुकी थी. भटके हुए पगों को सही दिशा मिल गई थी. बिशन का ध्यान पूर्णतया उसके मस्तिष्क से निकल गया था! हां, अब स्वयं से अधिक उसे विजय की चिंता थी. काश, ''से भी कोई सही राह दिखा देता!

●

दूसरी शाम, वह अपने शहर के स्टेशन पर खड़ा था. भाई-बहन के लिए टाफियां लेकर वह घर की ओर इस तरह चल पड़ा, जैसे वह अकेला नहीं उस महिला का आशीर्वाद भी उसके स. चल रहा है. न जाने कैसी होगी मां? विचित्र अपराधी भावना से उसका मन कराह उठा, जिसे उसने मां कहा, जिसने मां जैसा प्यार दिया, उसका कितना दिल दुखाया है उसने!

दबे पांव जब उसने घर में प्रवेश किया, तो अजीब करुणा की छाप दिखाई दी घर में! दरवाजे की दरार से देखा, पड़ोस की आंटी बैठी थी. मां की करुण आवाज उसके कान में पड़ी तो वह सिहर उठा.

"अब कहां ढूंढ़ूं, बहन? सारा शहर तो छान मारा! न जाने कहां भटक रहा होगा भूखा-प्यासा?" वह रो पड़ी.

"कहां तक रोएगी, रतन की मां! जब दर-दर की ठोकरें खाएगा, तब खुद ही घर की याद सताएगी और लौट आएगा. या फिर वह भी पुलिस के हाथों लौट आएगा, जैसे विजय लौट आया है. मैं तो देख आई हूं, सिर पीट-पीट कर अपनी गलती पर रो रहा था. माफी मांग रहा था मां-बाप से."

"तो विजय भी आ गया?" रतन के मन को शांति मिली.

"बस, एक बार रतन आए तो मैं यह पूछूं कि क्या उसकी अपनी मां भी उसे डांटती, तो वह भी ऐसे ही घर छोड़कर भाग जाता! भगवान जानता है, अपने बच्चों से बढ़कर मैंने प्यार किया है उसे."

रतन अपने को नहीं रोक सका! वह दौड़कर मां के सीने से लिपट गया और उसके आंसुओं से मां का आंचल भीगने लगा. . .

उसके सिर पर हाथ फेरती मां हर्षातिरेक के कारण कुछ बोल नहीं सकी. बस, उसकी आंसू भरी आंखें ही मुस्कराती रहीं!

●

नहा-धोकर खाना खाने के बाद रतन घर से बाहर निकल कर खड़ा हो गया तो उसे विजय आता हुआ दिखाई दिया.

"विजय. . .!" उसने पुकारा.

"ओह. . . रतन! तुम आ गए. . . ?"

दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा. दोनों की आंखें कह रही थीं कि अब भी वे एक-दूसरे के मित्र रहेंगे, परंतु अब उनकी राहें दूसरी होंगी—सदविचारों की राहें. इस ठोकर ने उन्हें जीवन की यथार्थता से परिचित कराकर कर्तव्य का ज्ञान करवा दिया था!

विजय के जाते ही रतन उस महिला का कर्ज उतारने के लिए कागज-कलम लेकर बैठ गया और कुछ लिखने से पहले ही दो आंसू उसकी आंखों से टपक पड़े. ●

द्वारा, श्री रमाशंकर मिश्र, डी.एस.पी.,
बी–5, आफिसर्स कालोनी,
सिविल लाइन्स, बदायूं (उ. प्र.)

खोखली नींव (पृष्ठ 9 से आगे)

आया है! रघु की नींव खोखली ही रहने दूं.'

रात के गहन अंधकार में मेरा मन अट्टहास कर उठा. उपरोक्त विचार ने मेरे अहम् को शांति दी. मैंने करवट बदली और सोने की कोशिश करने लगा.

●

गाड़ी आने में पंद्रह मिनिट बाकी थे. मुझे एक-एक मिनिट पहाड़ की तरह लग रहा था. गांव का यह प्लेटफार्म मुझे काटने को दौड़ रहा था. मेरी इच्छा किसी भी तरफ देखने की नहीं थी, ना ही मैं किसी से बात करना चाहता था. इसलिए मैं अपने सामान पर उकड़ू होकर बैठा था तथा अपना मुंह दोनों घुटनों के बीच छिपाए सोच रहा था—'कितनी आशाएं लेकर इस गांव में आया था और निराशाओं का ढेर लेकर वापस जा रहा हूं.'

कहने को तो स्कूल की छुट्टियां हो गई थीं. लेकिन मैं हमेशा के लिए छुट्टी ले आया था. मैंने त्याग-पत्र दे दिया था. इस दयनीय स्थिति में अध्यापन कार्य करना मेरे लिए संभव नहीं था.

इस समय रघु को पास कर देना भी बड़ा विचित्र लग रहा था. जिसने भी रघु के पास होने की खबर सुनी, हैरान रह गया.

किसी ने कहा—"साला डर गया!"

किसी ने फतवा दिया—"अजी, घूस खा ली होगी. पहले पैसे नहीं मिले होंगे, इसलिए कूद रहा था!"

लोगों की बात जाने दीजिए. मैं खुद कल से यही सोच रहा था कि मैं बदला लेने पर क्यों उतर आया. साल भर जिन आदर्शों पर टिका रहा, उन्हें अपने अहम् को जरा-सी ठेस लग जाने के कारण छोड़ दिया. जरूर मेरे चरित्र निर्माण में कोई कमी रह गई है. स्कूली जीवन से ही मुझे जिस हेय दृष्टि से देखा जाता रहा है, शायद वही हीनता मेरे मन में घर कर गई है. हीनता के इसी सूराख पर जब ठाकुर साहब ने चोट की, तो मैं तिलमिला उठा था.

"सर . . ." भर्राए स्वर में आवाज आई.

मैंने आंखें खोलीं. सामने रघु खड़ा था. एक बार तो मैं उसे पहचान ही नहीं पाया—अस्त-व्यस्त कपड़े, बिखरे हुए बाल, उतरा हुआ चेहरा और लाल लाल आंखें.

"क्या है?"

"सर . . ." कुछ कहना चाहकर भी रघु आगे बोल नहीं पाया. अचानक वह मेरे पैरों में गिर पड़ा और फूट-फूट कर रोने लगा. मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया. मैंने तुरंत उसे उठा लिया—"क्या पागल हो गए? मैं अछूत!"

"नहीं, सर, अछूत तो मैं हूं . . . सर . . . सर, मैं आपको जाने नहीं दूंगा!"

"भगवान जाने क्या नई चाल है तुम्हारी?"

"वह रघु मर गया . . . सर . . . पहले . . . पहले मेरी बात तो सुन लीजिए." कुछ विचित्र-सी आवाज में रघु बोल रहा था.

"जो कुछ कहना है, जल्दी से कह डालो."

"आपने मुझे पास कर दिया!"

"वही किया जो तुम चाहते थे."

'मैं . . . मैं . . . इस लायक तो नहीं था. सर, आप ही तो एक ऐसे टीचर आए थे, जिन्होंने मेरे लिए सोचा था और आप ही मेरी नींव को खोखली छोड़े जा रहे हैं!"

"तुम कहना क्या चाहते हो? साफ-साफ कहो."

"सर, पिछले दो दिनों में क्या नहीं देखा है मैंने. परसों स्कूल से लौट कर पिता जी ने मुझे बुलाया और ढेर सारे सवाल पूछ डाले. मैं जवाब देने की बजाए उल्टा उन पर बरस पड़ा कि वह भी टीचर के बहकावे में आ गए. इस पर उन्होंने मुझे इतना मारा, इतना मारा कि . . ."

आगे रघु कुछ न कह सका. उसने अपनी कमीज ऊपर कर दी. पीठ पर जगह-जगह मार के नीले निशान उभरे हुए थे.

"सर, पिटने के बाद बदले की आग मेरे तन-बदन में सुलग उठी. मुझे सारे दुखों की जड़ आप ही नजर आए. बस उसी रात को मैं पिता जी का रिवाल्वर लेकर घर से भाग निकला. मैं रामधन के पास पहुंचा. उसके सामने अपनी योजना रखी, लेकिन उसने मेरा साथ देने से इंकार कर दिया. वह उल्टे मुझे ही समझाने लगा कि एक साल फेल होने से क्या बिगड़ता है? रामधन के पास से मैं और साथियों के घर गया. किसी ने भी मेरा समर्थन नहीं किया. दोस्तों ने तो मेरा साथ छोड़ ही दिया. मेरे मन में भी मेरे खिलाफ प्रतिद्वंद्वी उठ खड़ा हुआ. मेरी आंखों के आगे आपका विश्वास से भरा चेहरा घूम रहा था. दृढ़ता से भरी आपकी आवाज मेरे कानों को फाड़े डाल रही थी—देख लेना रघु . . . ये सब तुम्हारे दुश्मन हैं . . . समय आने पर तुम्हें दोष देकर अलग हो जाएंगे. . . परंतु तुम लौट नहीं सकोगे . . .

"अपने ऊपर से मेरा भरोसा उठ चुका था. मन के पशु को जिंदा रखने के लिए मैंने शराब भी पी रखी थी. दोपहर को रिजल्ट आउट होने से पहले मैं उस रास्ते पर जा बैठा, जिस रास्ते से आप स्कूल से वापस लौटते थे. पुलिया के पीछे छिपा हुआ मैं बेचैनी से आपका इंतजार कर रहा था कि सामने से रामधन दौड़ता हुआ आया—'रघु तुम पास हो गए . . . तुम पास हो गए, रघु' सहसा मुझे विश्वास नहीं हुआ. पास आकर रामधन ने प्रोग्रेस रिपोर्ट मेरे हाथों में थमा दी. सचमुच मैं पास था.

"यह एक असंभावित घटना थी. मैं काफी देर तक हक्का-बक्का खड़ा रहा. प्रोग्रेस रिपोर्ट हाथ में आते ही मेरे मन का शैतान पता नहीं कहां चला गया.

"मैं भागा भागा स्कूल गया, लेकिन आप वहां नहीं मिले. ऑफिस से मालूम हुआ कि आप इस्तीफा देकर रिजल्ट सुनाने से पहले ही चले गए. मैं थका हारा-सा घर लौटा. एकांत में बैठकर घंटों रोया. पास होने की मुझे बिलकुल खुशी नहीं हुई. दिन भर चोरों की तरह मुंह छिपाए मैं अपने कमरे में पड़ा रहा. शाम को जब पिता जी आए, तब मैंने उनसे मन की बात कही . . .

"अब मैं, आपको लेने आया हूं. मुझे इस तरह से पास नहीं होना है. मैं डिवीजन इम्प्रूव करने के बहाने दुबारा इसी कक्षा में पढ़ूंगा और आप ही से पढ़ूंगा."

मैंने अनमने स्वर में कहा, "ठीक है, छुट्टियों के बाद देखा जाएगा. वह देखो मेरी गाड़ी सीटी दे रही है." रघु पुनः बिफर पड़ा—"नहीं, सर, आपको कुछ दिन मेहमान बनकर हमारे यहां रहना होगा. सर, मैं जानता था कि आप मेरे कहने से नहीं चलेंगे."

इतना कह कर उसने प्लेट फार्म के दरवाजे की तरफ इशारा किया—"जरा पीछे मुड़कर तो देखिए, सर."

मैंने गर्दन घुमाकर देखा, तो देखता ही रह गया. सहसा विश्वास नहीं हुआ. हैड मास्टर साहब, स्कूल का स्टाफ, रघु के पिता जी और स्कूल के लड़के प्लेट फार्म के गेट पर खड़े थे.

अपने आंसू पोंछते हुए रघु बोला—"हम सब आपको लेने आए हैं. आप चलेंगे न?"

मैंने रघु को अपनी बांहों में भर लिया. आंखों से गंगा-जमुना बह चली थी. कितना गर्म और नर्म स्पर्श था रघु का!

डबडबाई आंखों से मुझे दूर जाती रेलगाड़ी दिखलाई दे रही थी. मुझे महसूस हो रहा था कि रघु ने अपनी नींव ठोस करने की भूमिका तो तैयार कर ही ली है, साथ ही मेरी नींव के सूराख को भी भर दिया है. ●

द्वारा भारतेंदुसिंह, पांडे क्वार्टर, गांधी म्युनिसिपल हॉल के सामने, सालगढ़रोड, बीकानेर.

महमूद

जूनियर

'कम-इन-प्लीज, कम-इन!' महमूद जूनियर मुझे अंदर ड्राइंग रूम की ओर इशारा करता हुआ कहता है. मैं उसे देखती हूं. यह छोटू आर्टिस्ट, इसे क्या सम्बोधित करूं, मेरी समझ में नहीं आता. आप, तुम या. . .

खूब शोख रंगों से सजी हुई बैठक में बैठकर मैं एक बार फिर जरा अच्छी तरह से जूनियर को देखती हूं. इसने सफेद चिट्टी कमीज पहन रखी है, जिसके सारे बटन खुले हुए हैं और नीचे एक रंगीन कच्छी. उससे पूछूं कि यह क्या है, तो वह झटके वाली अंग्रेजी में बोलेगा—'इट्ज शाट्स (शार्ट्स).'

मैं उसे अपना परिचय देती हूं. जूनियर मेरे परदादा का-सा पोपला मुंह बना कर, और गंभीर होने की हरचंद कोशिश करता हुआ, बीच-बीच में सर हिला कर कहता है—'आई सी. . . आई सी. . . एस. . . .'

मैं सबसे पहले उसकी इस बनावटी और रटी हुई अंग्रेजी और गंभीरता को तोड़ना चाहती हूं, जिससे खुल कर बात हो सके. वह बिल्कुल मेरे पास पैर की पालथी मारे, और एक पैर नीचे हिलाता हुआ बैठा है. और परदादा से जूनियर बनता जा रहा है—जैसा कि हम लोग परदे पर देखते हैं.